अंक 3
संख्या 2

मंगलवार
29 अप्रैल
सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. एडवाइजरी कमेटी की रिपोर्ट और मौलिक अधिकारों की अन्तर्कालीन रिपोर्ट के सम्बन्ध में प्रस्ताव 1

2. परिशिष्ट 60

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 29 अप्रैल, सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक मंगलवार ता. 29 अप्रैल सन् 1947 को प्रातः साढ़े आठ बजे कौंसिल हाउस के कांस्टीट्यूशन हाल में माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुई।

माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल (बम्बई : जनरल): सभापतिजी, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''यह विधान-परिषद् अपने 24 जनवरी, सन् 1947 ई. के प्रस्ताव द्वारा नियुक्त एडवाइजरी कमेटी के रिपोर्ट की पेशी की मुद्दत को उस तारीख या तारीखों को बढ़ाना मंजूर करती है जो इस उद्देश्य के लिए अध्यक्ष महोदय अपने विचार से निर्धारित करें।''

सभा को मालूम है कि जब यह प्रस्ताव पास हुआ था हमें कहा गया था कि हम मौलिक अधिकारों तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों की अपनी अन्तर्कालीन रिपोर्ट क्रमशः छः हफ्ते और दस हफ्ते के अन्दर, तथा अपनी अंतिम रिपोर्ट अपनी नियुक्ति से तीन महीने के अन्दर पेश कर दें। हमने भरसक यह कोशिश की कि निर्धारित समय के अन्दर अपना काम पूरा कर लें पर खेद है कि यह हमारे लिए सम्भव न हो सका। अपनी पहली बैठक में जो 27 फरवरी, सन् 1947 ई. को हुई थी हमने सर्वसम्मति से यह फैसला किया कि आपसे यह अनुरोध किया जाये कि आप हमारी उक्त रिपोर्ट की पेशी की मुद्दत को बढ़ा दें। हमने आशा कर रखी थी कि सभा उसे स्वीकार कर लेगी।

हमें इस बात का पूर्ण बोध है कि हमें शीघ्रातिशीघ्र अपनी रिपोर्ट पेश कर देना आवश्यक है। पर शायद यह सम्भव नहीं है कि निर्धारित समय सूची का कट्टरता से पालन किया जा सके। इसलिए यह हमारा अनुरोध है कि सभा से प्रस्ताव किया जाये कि वह इस अवधि को उस तारीख या तारीखों तक बढ़ा दे जो आप अपने विचार से तय करें।

अध्यक्षः प्रश्न यह है:

> 'यह विधान-परिषद् अपने 24 जनवरी सन् 1947 के प्रस्ताव द्वारा नियुक्त एडवाइजरी कमेटी के रिपोर्ट की पेशी की मुद्दत को उस तारीख या तारीखों तक बढ़ाना मंजूर करती है जो इस उद्देश्य के लिए अध्यक्ष अपने विचार से निर्धारित करें।'

(यह प्रस्ताव मंजूर किया गया।)

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** अध्यक्ष जी, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं:

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल]

''यह विधान-परिषद् अपने 24 जनवरी, सन् 1947 ई. के प्रस्ताव द्वारा नियुक्त एडवाइजरी कमेटी से मौलिक अधिकारों के विषय पर प्राप्त अन्तर्कालीन रिपोर्ट पर विचार करे।''

श्रीमान्, यह एक प्रारम्भिक या अन्तर्कालीन रिपोर्ट है क्योंकि जब कमेटी मौलिक अधिकारों को निर्धारित करने और उन्हें विधान में सम्मिलित करने के प्रश्न पर विचार करने बैठी तो पहले यह इस नतीजे पर पहुंची कि मौलिक अधिकारों को दो भागों में बांट देना चाहिए—पहला हिस्सा न्याय और दूसरा हिस्सा गैर-न्याय, (justiciable and non-justiciable)। जब कमेटी पहले हिस्से पर ही विचार कर रही थी तब भी वह इसी नतीजे पर पहुंची कि हम लोग इस बात का आखिरी फैसला नहीं कर सकते कि कौन से मौलिक अधिकार विधान में सम्मिलित किये जायें, उन सब परिस्थितियों पर विचार करते हुए जो आज वर्तमान है और जो भिन्न-भिन्न कमेटियों की रिपोर्टों पर विचार करते समय और विधान बनाते समय उठ सकती है, यह सम्भव है कि इस तरह की सुझाव देने वाली बातें उठें कि मौलिक अधिकारों में और वृद्धि की जाये या छोटे-छोटे ऐसे परिवर्तन या सुझाव अपनाये जायें जो वांछनीय हो। यह तो सिर्फ रिपोर्ट का एक खाका है। विचारार्थ सभा के सामने मैं यह सुझाव भी रख देना चाहता हूं कि एडवाइजरी कमेटी द्वारा बनाये हुए क्लाजों पर विचार करते समय सभा के लिए जरूरी नहीं है कि वह सुझाये हुये अधिकारों के प्रत्येक क्लाज के शब्दों पर सख्ती से विचार न करे। हो सकता है कि जब आप इन क्लाजों का कानूनी मस्विदा तैयार करने बैठें तो इनमें कुछ परिवर्तन आवश्यक हों, इसलिए यह बेहतर होगा कि इनका मस्विदा बनाने का काम मस्विदा कमेटी पर छोड़ दिया जाये जो इनमें ऐसे परिवर्तन कर लेगी जो इनकी वाक्य रचना के अनुसार आवश्यक हों। जिस बात को आज करने के लिए मैं सभा से निवेदन करना चाहता हूं वह यह है कि वह आमतौर पर उन सिद्धान्तों को स्वीकार करे जो उसके विचारार्थ उपस्थित किए हुए क्लाजों से सन्निहित हैं ताकि हमें उस समय ज्यादा वक्त न लगाना पड़े जबकि हम मस्विदे के उन कानूनी ब्यौरों पर विचार करने बैठें जिन्हें हमें अपनाना है; या छोटे-मोटे ऐसे परिवर्तन या सुझाव अपनाये जायें जो वांछनीय हो। यह तो रिपोर्ट का सिर्फ एक खाका है। विचारार्थ सभा के सामने मैं यह सुझाव भी रखना चाहता हूं कि उन क्लाजों पर विचार करते समय जिनकी कि एडवाइजरी कमेटी ने सिफारिश की है यह जरूरी नहीं है कि सुझाये हुए अधिकारों के प्रत्येक क्लाज के शब्दों पर सभा सख्ती से विचार करे। हो सकता है कि जब आप इन क्लाजों का कानूनी ढंग पर आखिरी मस्विदा तैयार करने बैठें तो उनमें कुछ परिवर्तन आवश्यक दिखाई दें, इसलिए यह बेहतर होगा कि इनका मस्विदा बनाने का काम एक मस्विदा कमेटी पर छोड़ दिया जाये जो उनमें ऐसे परिवर्तन कर लेगी जो उनकी वाक्य रचना के अनुसार जरूरी हों। जिस बात को आज करने के लिए मैं सभा से निवेदन करना चाहता हूं वह यह है कि वह आम तौर पर उन सिद्धान्तों को स्वीकार कर ले जो उसके

विचारार्थ उपस्थित किये हुए क्लाजों में सन्निहित हैं, ताकि हमें उस समय ज्यादा समय न लगाना पड़े जबकि हम मस्विदे के उन कानूनी ब्यौरों पर विचार करने बैठें जिन्हें हमें अपनाना है। अभी हमने न्याय अधिकारों पर विचार करने का सुझाव सभा को दिया है। दूसरे अध्याय पर हम स्वयं अभी विचार नहीं कर पाये हैं मौलिक अधिकारों की सब-कमेटी ने अपनी बैठक में इन मामलों पर प्रायः एक पखवाड़े तक विचार किया और अपना काफी समय और श्रम लगाया उसके बाद यह रिपोर्ट अल्पसंख्यकों की सब-कमेटी के पास भेज दी गयी। यह सब कमेटी ने भी अपनी बैठक में इसके भिन्न-भिन्न क्लाजों पर खूब सावधानी से विचार किया और उनमें कुछ परिवर्तन भी किये जो मंजूर किये गये। हमारी बैठक तीन दिनों तक हुई और हमने यह रिपोर्ट पुनः एडवाइजरी कमेटी के सामने विचारार्थ पेश की। एडवाइजरी कमेटी की बैठक भी दो दिनों तक हुई और उसने अपनी दोनों बैठकों में सारी बातों पर पुनः विचार किया। इस तरह सभा देखती है कि यह महज एक अटकल पच्चू रिपोर्ट नहीं है वरन् इसके सभी पहलुओं पर पूरी तरह से गौर किया है। इस पर सुझाव पेश करना, इसमें कोई परिवर्तन या वृद्धि करना अथवा इस पर संशोधन रखना तो सम्भव है, पर सभा को सम्भवतः उतना समय नहीं मिलेगा जितना कि सब-कमेटी को मिला था मैं विनम्रतापूर्वक सभा से निवेदन करूंगा कि वह सावधानी से इसके भिन्न-भिन्न क्लाजों पर विचार करें और सभा के सामने जब संशोधन रखे जायेंगे तो पूरी तरह उनकी छान-बीन की जायेगी। मैं सुनता हूं कि लगभग 150 संशोधन आने वाले हैं और उनकी जांच-पड़ताल में कुछ समय लगेगा। शायद कार्यालय ने 25 या 30 संशोधनों पर अब तक छान-बीन की है और आज भी बैठक का सारा समय शायद उन्हीं पर विचार करने में लग जायेगा। मैं प्रस्ताव करता हूं कि रिपोर्ट पर विचार किया जाये और अगर यह प्रस्ताव पास हो गया तो हम अधिकारों के प्रत्येक क्लाज (खंड) पर विचार प्रारम्भ कर देंगे।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह पेश हुआ हैः

> ''यह विधान-परिषद् अपने 24 जनवरी, सन् 1947 ई. के प्रस्ताव द्वारा नियुक्त एडवाइजरी कमेटी से मौलिक अधिकारों के विषय पर प्राप्त अन्तर्कालीन रिपोर्ट पर विचार करे।''

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू** (यू.पी. : जनरल): अध्यक्ष महोदय, प्रस्तुत रिपोर्ट उन मौलिक अधिकारों पर विचार करती है, जो न्याय है, अर्थात् जिनके सम्बन्ध में न्यायालय में निर्णय मांगा जा सकता है, पर अगर आप बारीकी से उस पर गौर करें तो देखेंगे कि इसमें कुछ ऐसी बातों का भी जिक्र है, जो मौलिक अधिकारों में शामिल नहीं की जा सकतीं और उसमें कुछ उन मौलिक अधिकारों पर विचार किया गया है जो न्याय नहीं है। मौलिक अधिकारों की श्रेणी में न आने वाली एक बात का उदाहरण पेश करने के लिए अध्यक्षजी, मैं क्लाज 10 का हवाला दूंगा, जिसमें परस्पर प्रदेशों (इकाइयों) के बीच तथा नागरिकों के बीच व्यापार, व्यवसाय और समागम की पूर्ण स्वतंत्रता रखी गयी है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष जी, एक वैधानिक बात पूछनी है। मैं जानना चाहता हूं कि आया पं. हृदयनाथ कुंजरू प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं या समर्थन। वह एक क्लाज विशेष पर आपत्ति कर रहे हैं, पर उनके लिए यह समय नहीं है। मैं जानना चाहता हूं कि आया वह विचारार्थ पेश प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं, या समर्थन?

***अध्यक्ष:** अगर माननीय सदस्य को आप उनका कथन पूरा करने दें तो आपको मालूम हो जायेगा कि वह समर्थन कर रहे हैं, या विरोध!

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** धारा सभाओं में बरते जाने वाले नियमों के अनुसार यही मौका है जबकि सरसरी तौर पर उस पर राय जाहिर की जा सकती है और मुझे उम्मीद है कि सारी रिपोर्ट पर अपनी सरसरी राय जाहिर करने में मैं नियम के भीतर हूं। यह बतलाना मेरे लिए जरूरी नहीं है कि आया मैं रिपोर्ट में हर हिस्से से सहमत हूं या यह कि मेरे विचार से कुल मिला कर रिपोर्ट नामंजूर कर दी जानी चाहिए। इस अवसर पर तो न्यायत: मुझसे यही कहा जा सकता है कि मैं रिपोर्ट पर अपनी राय जाहिर करूं और सभा से कहूं कि रिपोर्ट में आये हुए आवश्यक मसलों पर सावधानी से विचार करें।

अध्यक्ष जी, अपनी पहली बात का खुलासा करने के लिए मैंने रिपोर्ट के क्लाज 10 की ओर संकेत किया है, जिसमें अन्योदिक व्यापार की स्वतंत्रता से सम्बन्ध में विचार किया गया है। हो सकता है कि यह बहुत वांछनीय हो और शायद यहां उपस्थित हर सदस्य यही चाहेगा कि भारतीय संघ के अन्तर्गत सारे प्रदेशों के बीच व्यापार की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए, परंतु मुझे संदेह है कि इस तरह का क्लाज मौलिक अधिकारों में शामिल किया जा सकता है। क्लाज 10 का सम्बन्ध ऐसी बात से है जो प्रांतीय अधिकारों पर सीधे कुठाराघात करता है। आप इस पर उस समय विचार कर सकते हैं, जब आप यूनियन और प्रांतों के अधिकारों को तय करने बैठें। मेरा तो कहना यह है कि आप ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न को अन्तर्प्रादेशिक व्यापार सम्बन्धी स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार की बात कहकर उस कमेटी के हाथ से नहीं ले सकते जो यूनियन और प्रांतों के विधानों पर विचार करेगी।

और फिर अध्यक्ष जी, इस खण्ड के एक शर्तिया फिकरे में कहा गया है कि यह दफा किसी भी प्रदेश (इकाई) को दूसरे प्रदेशों से आये हुये माल पर वैसा ही कर या चुंगी लगाने से न रोकेगी जैसा, कि वे प्रदेश अपने पैदा होने वाले माल पर लगाते हैं। मैं चाहता हूं कि यह बात मुझे समझा दी जाये कि अगर भिन्न-भिन्न प्रदेशों के बीच व्यापार-व्यवसाय की पूरी स्वतंत्रता रखनी है तो फिर किसी प्रदेश को यह इजाजत कैसे दी जायेगी कि वह.....।

***श्री एफ.आर. एन्थॉनी:** अध्यक्षजी, एक वैधानिक प्रश्न है। क्या हम सभी इस समय मौलिक अधिकार-सम्बन्धी नियमों पर अपनी-अपनी राय जाहिर कर सकते हैं?

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** श्रीमान्, मिस्टर एन्थॉनी केन्द्रीय सभा के सदस्य हैं और वह इस बात को बखूबी जानते हैं कि किसी बिल पर सरसरी तौर पर राय जाहिर करने में कोई भी सदस्य अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिये कुछ क्लाजों की चर्चा कर सकता है। मुझे आश्चर्य है कि वह खड़े होकर मेरे कथन पर यह कहकर आपत्ति कर रहे हैं कि वे तफ्सील की बातें हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि केन्द्रीय सभा में कई मौकों पर उन्होंने अपने अधिकार का प्रयोग किया है, अपनी राय जाहिर की है जैसा मैं यहां अभी कर रहा हूं।

अध्यक्ष जी, इस तरह के और भी कई उदाहरण हैं जो मैं पेश कर सकता हूं, पर मैं नहीं समझता कि अपनी बात का खुलासा करने के लिए मुझे इसकी जरूरत है। यह दिखाने के लिए कि प्रस्तुत रिपोर्ट में कहां-कहां पर ऐसी बातें रखी गयी हैं जो मुश्किल से न्याय-अधिकारों में शामिल की जा सकती हैं। मैं दो-एक उदाहरण दूंगा, क्लाज (खंड) 8 में कुछ उन मौलिक अधिकारों पर विचार किया गया है जो बहुत प्रचलित है, जैसे भाषण की स्वतंत्रता, बिना शस्त्र शान्तिपूर्वक कहीं समवेत होने का अधिकार, संघ बनाने का अधिकार, इन सभी अधिकारों पर कुछ-न-कुछ, पाबंदियां लगा दी गयी हैं जैसा कि हर देश में आवश्यक समझा जाता है। अध्यक्ष जी, यह सर्वविदित है कि इन पाबन्दियों के कारण ये अधिकार जिनका मैंने अभी जिक्र किया है, गैर-न्याय (not-justiciable) बन जाते हैं आप भारतीय नागरिकों को साधारण अधिकार प्रदान कर सकते हैं। पर अगर इन पर वे प्रतिबंध लगा दिये जायेंगे जिनका जिक्र किया जा चुका है और मैं मानता हूं कि उन पर कुछ ऐसे प्रतिबंध लगाने ही होंगे तो फिर व्यावहारिक दृष्टि से ये अधिकार न्याय न रह जायेंगे। इस हालत में ये किसी नीति के पालन के लिए केवल सिद्धान्तमूलक आदेश ही रह जायेंगे इस मौके पर, जबकि श्रीयुत पटेल के कथनानुसार हम केवल उन्हीं अधिकारों पर विचार करेंगे जिनको व्यावहारिक रूप देने के लिए हम कोर्ट में अपील कर सकते हैं तो उन मामलों पर विचार करने में मुझे कोई लाभ नहीं दिखाई देता। श्रीमान्, अपने दृष्टिकोण को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं दूसरा उदाहरण देता हूं। मैं वाक्यांश 8 के उपवाक्यांश (3) की ओर संकेत करता हूं जिसमें प्रत्येक नागरिक के उस अधिकार पर विचार किया गया है कि वह यूनियन के किसी भी हिस्से में रह, बस सकता है, सम्पत्ति ग्रहण कर सकता है। और किसी भी व्यापार, व्यवसाय या पेशे को अपना सकता है। इस अधिकार के सम्बन्ध में यह शर्त रख दी गयी है कि—

''कानून के जरिये ऐसे उचित नियंत्रणों की व्यवस्था की जायेगी जो जनता

[माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू]

के हित के तथा लिए अल्पमत-वर्ग और कबायली जातियों की रक्षा के लिए आवश्यक होंगे।

अब अध्यक्ष जी, यह साधारणत: वांछनीय है कि आवागमन की पूरी आजादी होनी चाहिए। पर मैं नहीं समझता कि हम बिना किसी शर्त या प्रतिबंध के इस अधिकार को मंजूर कर सकते हैं कि एक प्रांत के निवासी दूसरे प्रांत में जाकर बस सकते हैं। सम्बन्धित प्रांत की हुकूमत को यह अधिकार मिलना चाहिए कि—

('हम सुनाई नहीं देता हूं, माइक्रोफोन काम नहीं कर रहा है' की आवाज) श्रीमान्, मैं बिना माइक्रोफोन के सहारे अपनी आवाज सदस्यों तक पहुँचा सकता हूं। मैं वाक्यांश 8 के उपवाक्यांश (3) के सम्बन्ध में अभी बोल रहा था। यह वाक्यांश कहता है कि प्रत्येक नागरिक को अधिकार है कि वह यूनियन के किसी हिस्से में रह और बस सकता है। मेरा कहना है कि यूनियन में आने-जाने की स्वतंत्रता आवश्यक और वांछनीय है पर यूनियन के किसी हिस्से में रहने या बसने का प्रश्न विवाद से खाली नहीं कहा जा सकता।

***अध्यक्ष:** ध्वनि-विस्तार-यंत्र काम कर रहा है।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** एतदर्थ श्रीमान् को धन्यवाद देता हूं पर मैं समझता हूं कि बिना यंत्र के भी मैं आवाज सदस्यों तक पहुँचा सकता हूं। मैं कह रहा था कि प्रान्तों को अवश्य यह अधिकार होना चाहिए कि वे अपने साधनों के विचार से इस बात का फैसला कर सकें कि उनकी आबादी कितनी होनी चाहिए। यहां दिये हुए सिद्धांत के अनुसार किसी भी प्रांतीय सरकार से न्यायत: यह नहीं कहा जा सकता कि वह अन्य प्रान्त के प्रवासियों की किसी असीम संख्या को अपने यहां आने दें। उदाहरणार्थ आप आसाम का ही प्रश्न लीजिए। क्या कोई भी आसाम की सरकार को मजबूर कर सकता है कि वह वर्तमान समय में किसी पड़ोसी प्रान्तों के असंख्य लोगों को अपने प्रान्त में आकर बसने दे? आसाम की सरकार के सामने एक असाधारण कठिन समस्या उपस्थित हो गयी है और वाक्यांश 8 (3) वहां की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में एक अद्‌भुत उपेक्षामूलक मनोवृत्ति का परिचय देता है। अध्यक्ष जी, मैं समझता हूं कि यह अधिकार केवल ऐसी विशेष परिस्थितियों में ही दिया जा सकता है जिनका खुलासा कर देना जरूरी है।

***डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं वक्ता महोदय को बाधा नहीं देना चाहता पर वाक्यांश 8 (3) के सम्बन्ध में विचार करते हुए वह उस वाक्यांश का बिल्कुल गलत स्वरूप सभा के सामने रख रहे हैं।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया:** बजाय इसके कि अपनी बात का खुलासा करने के लिए उदाहरण दें वह इसके गुण-दोष की बहस में पड़ गये हैं।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** श्रीमान्, बहैसियत एक पार्लियामेंटेरियन के आप जानते हैं कि मैं क्या कर रहा हूं। डॉ. अम्बेडकर की आपत्ति के सम्बन्ध में मैं कह सकता हूं और मुझे पक्का विश्वास है कि आप भी मुझसे सहमत होंगे। समूचे क्लाज को मय उसके शक्तियां फिकरे के पढ़ देता हूं।

***अध्यक्ष:** सदस्य महोदय से अनुरोध करूंगा कि वे अपने को उसी बात तक सीमित रखें जिसका वह खुलासा करना चाहते हैं और प्रस्ताव के गुणों पर बहस न करें।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** अपनी बात का खुलासा करने के लिए मैंने अब तक केवल दो उदाहरण दिये हैं और तीसरा अब दे रहा हूं। मैं प्रत्येक वाक्यांश पर नहीं विचार कर रहा हूं। डॉ. अम्बेडकर को सन्तुष्ट करने के लिए मैं वाक्यांश 8 (3) को पढ़कर सुना चुका हूं पर मैं इसे पुन: पढ़ देता हूं।

> ''कानून के जरिये ऐसे उचित नियंत्रणों की व्यवस्था की जायेगी जो जनता के हित के लिए तथा अल्पमत, वर्ग और कबायली जातियों की रक्षा के लिए आवश्यक होंगे।''

शायद डॉ. अम्बेडकर का कहना यह है कि इस क्लाज की वाक्य रचना ऐसी है कि इससे कोई भी प्रान्त इस बात का फैसला कर सकता है कि बाहर के आने वालों को वह अपनी सीमा में बसने दे या नहीं। अगर यही बात है तो इन शब्दों पर एक भाष्य की आवश्यकता पड़ेगी। और फिर अगर यह नियम इतना व्यापक है। जितना कि डॉ. अम्बेडकर कहते हैं तो क्लाज 8(3) में दिये हुये अधिकार न्याय नहीं रह जाते हैं। मैं समझता हूं कि अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिये मैं काफी कह चुका हूं। इसलिये इस बात पर और अधिक कहने की जरूरत नहीं है पर बैठने के पहले मैं पुन: कह देना चाहता हूं कि इस रिपोर्ट के कई नियमों पर इस समय विचार करने में कोई विशेष लाभ नहीं है। मौलिक अधिकारों की सब-कमेटी को अभी मौलिक अधिकारों पर विचार करना है और मौलिक अधिकारों पर विचार करते समय इन नियमों पर भी विचार किया जा सकता है। परन्तु यदि सभा इस रिपोर्ट पर विचार करना चाहती है तो इसे इस बात की विशेष सावधानी रखनी होगी कि जो अधिकार इसमें आये हैं वे वस्तुत: न्याय हैं।

***श्री प्रमथ रंजन ठाकुर:** अध्यक्ष महोदय, यह तो केवल न्याय मौलिक अधिकारों की सूची है। मैं नहीं समझता कि अर्थ सम्बन्धी मौलिक अधिकार न्याय अधिकारों में क्यों न शामिल किये जायें। किसी देश का विधान बनाते समय आर्थिक अधिकारों पर गौर करना जरूरी है और उनको न्याय करार देना भी जरूरी है मैं नहीं समझता कि खानों तथा जरूरी और बुनियादी उद्योग-धंधों का राष्ट्रीयकरण क्यों न किया जाये। इसके अलावा मौलिक अधिकारों की इस सूची पर तो अल्पसंख्यक उपसमिति की रिपोर्ट की रोशनी में ही विचार करना चाहिये था।

[श्री प्रमथ रंजन ठाकुर]

अल्पसंख्यकों की उप-समिति केवल दो ही दिन बैठी और वह उन संरक्षणों के तफसील में न जा सकी जो अल्प सम्प्रदायों के लिये जरूरी है। आप जानते हैं कि इस उप-समिति की रिपोर्ट का मौलिक अधिकार सूची से गहरा सम्बन्ध है।

दूसरी बात जिसका मैं जिक्र करना चाहता हूं वह है क्लाज 6 में उल्लिखित अस्पृश्यता के सम्बन्ध में; उक्त क्लाज में कहा गया है:

> ''अस्पृश्यता चाहे किसी भी रूप में हो समाप्त की जाती है इसके बिना पर किसी भी असमर्थनता को लागू करना अपराध समझा जायेगा।''

मैं नहीं समझता कि बिना वर्ण व्यवस्था को उठाये आप अस्पृश्यता को कैसे उठा सकते हैं? अस्पृश्यता और कुछ नहीं है यह तो वर्ण व्यवस्था रूपी रोग का लक्षण है। वर्ण व्यवस्था के कारण ही इसका आज अस्तित्व है। मैं नहीं समझता कि इसके वर्तमान स्वरूप में इसे मौलिक अधिकारों की सूची मैं कैसे रहने दिया जा सकता है। जब तक कि वर्ण व्यवस्था को हम बिल्कुल खत्म नहीं कर देते, अस्पृश्यता की समस्या का समाधान ढूंढना एक व्यर्थ और बेतुकी बात है। मुझे और कुछ नहीं कहना है। मुझे विश्वास है कि सभा मेरे सुझाव पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी।

***अध्यक्ष:** तो मैं यह समझ लेता हूं कि माननीय सदस्य अपना संशोधन पेश करना नहीं चाहते।

***श्री प्रमथ रंजन ठाकुर:** मैं अपना संशोधन नहीं पेश करूंगा।

***श्री सोमनाथ लाहिरी:** मैं पंडित कुंजरू के कथन से सहमत हूं क्योंकि यह बहुत ही कठिन है कि उसके लिए कोई सूक्ष्म भेद स्थित किया जा सके कि न्याय-अधिकार क्या है और गैर-न्याय क्या है? उदाहरणार्थ, जब हम यह नियम बनाते हैं कि लोगों को काम करने का हक होगा यानी बेकारी मुल्क में न रहने दी जायेगी तो यह है सामाजिक अधिकार। अगर इसे आप मौलिक अधिकारों का आवश्यक अंग नियत कर देते हैं तो स्वाभाविक है कि यह न्याय ही होगा। उसी तरह भूमि के राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी प्रश्न को लीजिये। अगर आप कहते हैं कि भूमि जनता की सम्पत्ति और किसी की नहीं तो निस्सन्देह यह एक सामाजिक और मौलिक अधिकार है। परन्तु तथापि अगर इसे व्यावहारिक रूप देना है तो यह न्याय अधिकार भी है। इसलिये न्याय अधिकारों और सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों के बीच कोई सूक्ष्म भेद निर्धारित करना स्वेच्छाचारिता होगी। अत: अगर सारी रिपोर्ट आ जाये तो उस पर विचार करने में हमें ज्यादा सहूलियत होगी क्योंकि उस हालत में हमें मालूम रहेगा कि उसमें क्या है? अन्यथा इस बात की आशंका है कि जब हम किसी भी बात को आवश्यक समझ कर उसे रखेंगे तो हमें यह कहा जा सकता है कि सामाजिक और आर्थिक अधिकार अभी नहीं, बाद में आयेंगे। इसलिये मैं पंडित कुंजरू के इस कथन का समर्थन करता हूं कि सभी बातों पर साथ

विचार किया जाये। मुझे इस जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं दिखाई देती कि इन कतिपय मौलिक अधिकारों को अभी मंजूर कर लिया जाये। कमेटी द्वारा पेश की हुई उस रिपोर्ट को पढ़कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। कमेटी द्वारा इस रिपोर्ट के पेश किये जाने के पहले परिषद् के कांग्रेसी गिरोह की ओर से मुझे एक सरकुलर मिला था जिसमें कई अधिकारों को गिनाया गया था। उनमें बहुत सी अच्छी बातें थीं। बाद में जब हमें रिपोर्ट मिली तो हम देखते हैं कि इसमें से कई अच्छी-अच्छी बातें निकाल दी गयी हैं जो सरकुलर में थीं। मैं इस बात को और कड़ाई से पेश करना चाहता हूं। मैं ऐसा महसूस करता हूं कि प्रस्तुत रिपोर्ट मानों कि पुलिस के दृष्टिकोण से तैयार की गयी है और उसी तरह की बहुत सी व्यवस्थायें इसमें रखी गयी हैं। यह क्यों? आप देखेंगे कि कम से कम अधिकार दिये गये हैं और वह भी बड़ी अनिच्छा के साथ और फिर ऊपर से इन तथाकथित अधिकारों के साथ-साथ पाबन्दियां लगा दी गई हैं। करीब-करीब सभी अधिकारों के साथ पाबन्दियां लगायी गयी हैं जिनसे ये अधिकार बेजान हो जाते हैं। क्योंकि सभी जगह यह कहा गया है कि गम्भीर परिस्थिति में अधिकार आकस्मिक संकट की स्थिति में ये अधिकार वापस ले लिए जायेंगे। अध्यक्ष महोदय, गम्भीर संकट की स्थिति क्यों हो सकती है, इसे परमात्मा ही जाने। गम्भीर संकट क्या है, इसका फैसला तो तत्कालीन सरकार के शासनप्रबन्ध पर निर्भर करता है। अतः स्वाभाविक है कि अधिकारारूढ़ दल या यों कहिए कि शासन-प्रबन्ध जिस बात को न चाहता होगा वही आकस्मिक संकट समझा जायेगा और इस तरह ये यत्किंचित मौलिक अधिकार दिये गये हैं वे सभी दबा दिये जायेंगे। अतः हमारे लिए यह आवश्यक है कि समूची रिपोर्ट पर एक साथ विचार करें और यह देखें कि जनता को क्या मिल रहा है। बतौर उदाहरण के मैं दो एक बातों का उल्लेख कर देना चाहता हूं। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में हमारी धारणा क्या होनी चाहिए? दूसरे देशों के अनुभवों के आधार पर हमें कुछ जानकारी है। पर इसके अलावा अपने अनुभवों के आधार पर हमें कुछ जानकारी प्राप्त है। हम जानते हैं कि विदेशी स्वेच्छाचारी सरकार ने अतीत में हमें कतिपय अधिकारों से वंचित रखा था। हमने इन कठिनाइयों का सामना किया है। हम सभी अधिकारों को जिन्हें जनता चाहती है अधिकार सूची में शामिल करना चाहते हैं। एक अत्यन्त आवश्यक बात जिससे हमारे देशवासी कष्ट पाते आ रहे हैं वह है जमानत और अन्य तरीकों से प्रेस सम्बन्धी अधिकार का कम किया जाना। समाचार पत्रों को बिल्कुल कुचल दिया गया है। सभी देशभक्त भारतीय यहां तक कि कांग्रेसजन भी इसके जबर्दस्त खिलाफ हैं और इसलिए प्रत्येक भारतीय अपने दिल में यही चाहता है ताकि जनता स्वतंत्रता को महसूस करे और तदनुसार काम करे पर हम देखते क्या हैं कि स्वतंत्र भारत में प्रेस सम्बन्धी स्वतंत्रता का इस तरह अपहरण न किया जाये। उपसमिति द्वारा पेश की हुई मौलिक अधिकारों की समूची सूची में हम प्रेस सम्बन्धी स्वतन्त्रता का कहीं उल्लेख भी नहीं पाते हैं। हां, एक स्थल पर केवल इतना कहा गया है कि विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता प्राप्त रहेगी। श्रीमान्, यह चीज है हमारे अनुभवों के खिलाफ और इसकी रक्षा होनी चाहिए।

[श्री सोमनाथ लाहिरी]

इसी तरह एक और चीज है जिसे हम हमेशा से देखते आ रहे हैं। वह यह है कि ऐसी हुकूमत जो जनता की राय पर नहीं निर्भर करती और निरंकुशता-पूर्वक केवल बल प्रयोग से शासन चलाती है वह बिना मुकदमा चलाये बिना न्याय करे ही लोगों को जेलों में बन्द रखती है। इस चीज के खिलाफ भारतीयों में एक तीव्र विरोध भावना रही है और उसके खिलाफ हम कांग्रेस तथा अन्य मंचों से घोर आन्दोलन करते आये हैं। परन्तु इस समिति द्वारा तय किये हुये मौलिक अधिकारों में हम इस अधिकार को नहीं पाते हैं। यही कारण है कि मैं यह कहने पर मजबूर हुआ हूं कि ये मौलिक अधिकार एक पुलिस की दृष्टिकोण से तय किये गये हैं न कि एक स्वतंत्र और संग्रामरत राष्ट्र के दृष्टिकोण से! रिपोर्ट में जो भी अधिकार दिये हैं वे एक-न-एक शर्त लगा कर छीन लिये गये हैं। क्या सरदार पटेल उससे भी अधिक चाहते हैं, जो ब्रिटिश हुकूमत एक विदेशी निरंकुश और जन विरोधी हुकूमत अपनी रक्षा के लिये चाहती है? निश्चय ही ऐसी बात नहीं है। सरदार पटेल को जनता के सभी वर्गों का प्रबल समर्थन प्राप्त है और इसलिये उन अधिकारों से कहीं कम अधिकार पाकर ही जो निरंकुश हुकूमत चाहती है वह देश पर शासन कर सकते हैं। परन्तु यहां हम यह देखते हैं कि शासन प्रबन्ध (Executive) का कोई भी वर्तमान अधिकार कम नहीं किया गया है बल्कि उल्टे कई अंशों में वे और बढ़ा दिये गये हैं। और अगर कुछ आये हुये संशोधन पास कर दिये जायें और खास करके अगर श्री राजगोपालाचार्य का संशोधन पास किया तो कई बातों में हालत आज से भी बदतर हो जायेगी। मैं एक उदाहरण रखता हूं। यहां सरदार पटेल के अनुसार राजद्रोहात्मक भाषण एक दंडनीय अपराध है। अगर भविष्य में कभी मैं यह कहूं अथवा समाजवादी पार्टी कहे कि अधिकारारूढ़ सरकार धृणित या निन्दनीय है तो सरदार पटेल यदि उस समय वह अधिकार में हों तो समाजवादी दल के लोगों को और मुझे भी जेल डाल देंगे यद्यपि जहां तक मैं जानता हूं इंग्लैंड में भी कोई भी भाषण चाहे वह कितना ही राजद्रोहात्मक क्यों न हो अपराध नहीं माना जाता जब तक कि उसके सिलसिले में कोई खुली कार्रवाई न की जाये। स्वतन्त्र देश के मौलिक अधिकारों का यही आधारभूत सिद्धान्त है पर यहां एक राजद्रोहात्मक वक्तृता भी अपराध समझी जायेगी। श्री राजगोपालाचार्य तो और आगे बढ़ना चाहते हैं। सरदार पटेल तो हमें दंड देंगे भाषण के देने पर, पर राजा जी तो भाषण देने के पहले ही हमें दंडित करना चाहते हैं। वह भाषण ही रोक देना चाहते हैं अगर अपनी प्रखर बुद्धि से आपने यह समझा कि वक्ता राजद्रोहपूर्ण भाषण देने जा रहा है तो वह उसे बोलने ही न देंगे।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया:** अध्यक्ष महोदय, हम संशोधनों की कल्पना उनके पेश होने से पहले ही नहीं कर सकते।

***श्री सोमनाथ लाहिरी:** और संशोधनों पर मैं विचार न करूंगा। अस्तु, इस

तरह हम देखते हैं कि इस विधान-परिषद् के कांग्रेसी गिरोह की ओर से प्रचारित सरकुलर के अनुसार साधारणत: कांग्रेस जनों में यही भावना है कि मौलिक और नागरिक अधिकार बढ़ाये जायें। उन अधिकारों के जरिये देश एक स्वतन्त्र तरीके पर काम कर सकेगा और राजनैतिक विरोध विकास पा सकेगा। आखिर मध्यम वर्ग वालों के राष्ट्रीय प्रजातन्त्र में इन अधिकारों की जिनको पाने का आप प्रयास कर रहे है क्या जरूरत है? इसका एक मौलिक उद्देश्य यह है कि विपक्षी दल को इस बात की पूरी आजादी मिले कि वह अपने विचारों को व्यक्त कर सके अपने निष्कर्ष निकाल सके और जो कुछ कहना चाहे वह कह सके। अगर मैं विपक्षी दल का हूं या दूसरा कोई विपक्षी दल का है तो निश्चय ही यह कहना उसका काम है कि वर्तमान सरकार निंद्य है अन्यथा वह विपक्षी नहीं है। मेरा ऐसा कहने का अधिकार क्यों कम किया जायेगा और फिर ऐसी स्थिति में हम ऐसा क्यों समझेंगे कि राजनैतिक विरोध का स्तर समुन्नत होगा और गणतन्त्र विकास पायेगा। ऐसा नहीं हो सकता। इस हालत में गणतन्त्र को अधिकारारूढ़ दल या शासन प्रबन्ध की मर्जी और दया पर निर्भर करना पड़ेगा। गणतन्त्र का यह आधार नहीं है।

श्रीमान्, मैं समिति से अनुरोध करूंगा कि वह संशोधनों पर उदारता से विचार करे और यथाशक्ति उन्हें अपनाने की चेष्टा करे ताकि हम वस्तुत: अच्छे गणतन्त्रीय मौलिक अधिकारों को पा सकें जिनसे हमारी जनता को स्वतन्त्रा की सच्ची अनुभूति प्राप्त हो सके और देश शक्तिशाली होता जाये। अन्यथा यदि हम मौलिक अधिकारों को निर्धारित कर दें और फिर उनको व्यर्थ बनाने के लिये हर क्लाज पर एक शर्त रख दें तो इससे लोकतन्त्रीय संसार की दृष्टि में हम स्वयं हास्यास्पद बन जायेंगे।

***श्री एस.के. सिधवा** (कराची): अध्यक्ष महोदय, पहले मैं मिस्टर लाहिरी की वक्तृता के सम्बन्ध में विचार करूंगा। यह कह कर कि समिति ने कई मामलों में आर्थिक और मौलिक अधिकारों की बिल्कुल उपेक्षा की है, उन्होंने सभा को गलत-फहमी में डाल दिया है। अपना प्रस्ताव पेश करते हुये सरदार पटेल ने उस बात को स्पष्ट कर दिया है कि यह रिपोर्ट केवल एक प्रारम्भिक या अन्तर्कालीन रिपोर्ट है। आर्थिक और राजनैतिक अधिकार सम्बन्धी प्रस्ताव बाद में पेश किया जावेगा। श्रीयुत लाहिरी को मालूम होना चाहिये कि हम सब इस सम्बन्ध में असावधान नहीं है। नागरिकों के आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों के सम्बन्ध में हम उससे भी ज्यादा उत्सुक है, जितना कि वह समझते हैं; इसलिए यह कहना कि अधिकार इसी रिपोर्ट में पेश किये जाने चाहिए थे और ऐसा न करके हम दुनिया की निगाह में अपने आपको हास्यास्पद बना देंगे, सभा से अन्याय होगा।

अब मैं डॉ. कुंजरू के वक्तव्य पर आता हूं। उनको यह कहते सुन कर कि रिपोर्ट के कुल क्लाज मौलिक या न्याय अधिकारों में नहीं आते हैं, मुझे सचमुच बड़ा अफसोस हुआ। जिसने भी दूसरे देशों के भिन्न-भिन्न विधानों का अध्ययन किया है उसे मालूम होगा कि उनमें जनता के आर्थिक, व्यावसायिक और व्यापारिक

[श्री एस.के. सिधवा]

अधिकारों पर अध्याय के अध्याय रंग डाले गये हैं। डॉ. कुंजरू का यह कहना कि ये मौलिक या न्याय अधिकार नहीं हैं, सभा के प्रति अन्याय है। यह दिखाने के लिए कि व्यापारिक, व्यवसायिक और आर्थिक अधिकार मौलिक तथा न्याय अधिकार हैं, मैं कुछ विधानों के चंद पैराग्राफ पढ़कर सुनाये देता हूं। जर्मनी के आर्टिकल 139 का दूसरा हिस्सा कहता है:

> ''हर यूनियन की सम्पत्ति की ओर अन्य अधिकारों की जिनका सम्बन्ध किसी ऐसी सम्पत्ति से हो जो सार्वजनिक कामों के लिए या सामाजिक अथवा व्यापारिक कामों के लिए लगा दी गयी हो, सुरक्षा का वचन दिया जाता है।''

फिर आर्टिकल 151 में कहा गया है—

> ''रीख के कानूनों के मुताबिक व्यापार और व्यवसाय सम्बन्धी स्वतंत्रता की गारंटी दी जाती है।''
>
> ''तारीख वर्तमान आवश्यकताओं के दृष्टि में रखकर तथा समाज के आर्थिक हित के लिए कानून बनाकर आर्थिक संगठनों और संस्थाओं को बाध्य कर सकती है कि वे स्वशासन के सिद्धांत पर परस्पर मिलकर एक संयुक्त संगठन बनायें जिससे कि राष्ट्र के उत्पादनमूलक सारे साधनों का एक होकर काम करना निश्चित हो जाये और उसके प्रबन्ध में मजदूरों और कारखानेदारों को शामिल किया जा सके तथा उपज, कल कारखानों का तैयार माल वितरण, खपत, कीमत, आयात और निर्यात इत्यादि प्रश्न समाज के आर्थिक हितों को दृष्टि में रखकर तय किये जा सके।''

इसके अलावा दक्षिणी अफ्रीका का ही विधान लीजिये, उसकी धारा 136 कहती है:

> ''यूनियन के अन्दर 'स्वतंत्र व्यापार' का सिद्धांत बरता जायेगा और यूनियन के स्थापित होने के पहले नवीन उपनिवेशों में आयात निर्यात तथा आबकारी के जो कर थे वे वैसे ही बने रहेंगे जब तक कि पार्लियामेंट कानून बनाकर दूसरी व्यवस्था न कर दे।''

क्लाज 10 और 8 में जिनका जिक्र डॉ. कुंजरू ने किया है, प्रदेशों और यूनियन के अंदर होने वाले व्यापारों की चर्चा है और मैं नहीं समझता कि ऐसा क्लाज क्यों न रखा जाये जो भिन्न-भिन्न प्रदेशों के बीच तथा यूनियन और प्रदेशों के बीच होने वाली तिजारत का बचाव कर सके। क्लाज 8 (3) कहता है:

> ''यूनियन के किसी भी हिस्से में रहने, बसने, सम्पत्ति लेने तथा कोई पेशा, व्यापार और काम करने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को है।''

यह न्याय और मौलिक अधिकार समझा जाता है। मगर रहने या बसने का अधिकार और क्या हो सकता है; इस हालत में मैं यह समझता हूं कि डॉ. कुंजरू

की आपत्ति लचर और अमान्य है। मैं श्री लाहिरी के इस कथन से बहुत अंशों में सहमत हूं कि यह रिपोर्ट पूर्ण नहीं है और हमें व्यापक पैमाने पर व्यक्तिगत और राजनैतिक अधिकार देने चाहिए। यह बात नहीं है कि हमने उस हिस्से की उपेक्षा की है। एजेंडा में कई संशोधन हैं। कुछ तो स्वयं मैंने पेश किये हैं और अन्य माननीय सदस्यों ने भी कुछ पेश किये हैं। सभा उन सभी पर विचार करेगी। मैं यह भी कह दूं कि कमेटी ने इस बात का सुझाव दिया है कि पत्र-व्यवहार के गोपनीयता की गारंटी होनी चाहिए, और पत्रों तथा टेलीफोनों पर कोई रुकावट न डालनी चाहिए। परन्तु प्रधान समिति ने इस सुझाव को निकाल दिया है। इसलिए यह कहना अन्याय है कि मौलिक अधिकार समिति ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया। हमने इस आशय के संशोधन रखे हैं और उन संशोधनों पर विचार करना सभा का काम है। श्री लाहिरी को ऐसा न कहना चाहिए था। उन्हें अपने को उपस्थित संशोधनों तक ही सीमित रखना चाहिए था। अतः अध्यक्ष महोदय, मेरा यही मन्तव्य है कि ये मौलिक अधिकार न्याय हैं। मैं समझता हूं कि डॉ. कुंजरू की आपत्ति में औचित्य नहीं है और श्री लाहिरी ने प्रत्येक नागरिक के अधिकारों को बचाने के लिए संशोधन रखने की फिक्र में यह अनावश्यक बात कह डाली कि इससे दुनिया की निगाह में हम अपने को उपहासास्पद बना देंगे। वस्तुतः उनका यह कथन अत्यधिक है।

***प्रो. एन.जी. रंगाः** मैं इस कमेटी को धन्यवाद देता हूं कि इसने ऐसी बहुमूल्य रिपोर्ट प्रस्तुत कर उसे सभा के सामने उपस्थित किया है। मेरी समझ में सभा के किसी सदस्य के लिए यह योग्य बात नहीं है कि वह ऐसी तर्कसंगत समिति की रिपोर्ट को एक बनावटी दस्तावेज कहे। पर वक्ता के राजनैतिक इतिहास एवं उनकी पार्टी के पूर्व वृतांत्त को देखते हुए हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं है कि यह अयोग्य बात हमारे ही एक सदस्य के मुखारविंद से निकली है।

***अध्यक्षः** कृपया कोई व्यक्तिगत आक्षेप न कीजिये।

***प्रो. एन.जी. रंगाः** इस सम्बन्ध में मैं काफी कह चुका हूं। हमसे यह कहा गया है कि यह रिपोर्ट एक पुलिस के दृष्टिकोण से बनाई गई है। मैं नहीं समझता कि इसमें पुलिसमैन की चर्चा की गुंजाइश कहां है, सिवा इसके कि हमने अपने मौलिक अधिकारों को अमली रूप देने में उसे दूर रखने की कोशिश की है। सही-सही यही तो हमारा प्रधान लक्ष्य है, जिसको मद्देनजर रखकर मौलिक अधिकार सम्बन्धी यह घोषणा-पत्र तैयार किया गया है। इस देश में हमें पुलिसमैनों का ऐसा कटु अनुभव है कि इस दस्तावेज के बनाने वाले को ये क्लाज इस तरह से रखने पड़े हैं कि पुलिसमैन का कम से कम हस्तक्षेप संभव हो सके। यदि रिपोर्ट में ऐसी व्यवस्थायें हैं तो वह इस अभिप्राय से रखी गयी हैं कि वे लोग जो एक तरफ तो उदारवादिता में विश्वास रखते हैं और दूसरी ओर समष्टिवाद में (Communism) इन अधिकारों से लाभ उठाने और सर्वसत्ताग्राही (totalitarianism)

[प्रो. एन.जी. रंगा]

राज्य के लिए पथ प्रशस्त करने में समर्थ न हो सकें। गत दोनों महायुद्धों के अन्तरवर्ती काल में यूरोप के कई राज्यों में ऐसा हुआ, उन्होंने मौलिक अधिकारों से इतना लाभ उठाया कि सत्ता हस्तगत करके एक तरफ नाजीवाद और दूसरी तरफ समष्टिवाद का पथ प्रशस्त किया। ऐसे खतरे से हम अपने को बचाना चाहते हैं। ऐसे-ऐसे अनुभव के उदाहरण हमारे सामने आ चुके हैं और परिषद् जैसी किसी भी जिम्मेदार सभा का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसी व्यवस्था करे कि इस देश की गणतन्त्रीय लोक सभा संगठित या असंगठित दुष्टों के प्रयासों को हमारे लोकतंत्रीय राज्य को नष्ट कर इस देश में सर्वसत्ताग्राही राज्य स्थापित करने के प्रयासों को विफल कर सके।

यहां इस बात की चर्चा की गयी है कि इस रिपोर्ट में प्रेस की स्वतंत्रता का कहीं जिक्र नहीं आया है। परंतु अगर वे जरा सावधानी से देखते तो उन्हें मालूम हो जाता कि पहले क्लाज में ही इस स्वतंत्रता की व्यवस्था की गयी है। क्लाज 8 (ए) कहता है:

> ''भाषण की और विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता हर नागरिक को प्राप्त है।'' यहां विचार व्यक्त करने में प्रेस की स्वतन्त्रता भी शामिल है।

अब दूसरी बात की ओर आइये। हमसे पूछा जाता है कि मौलिक अधिकारों में विपक्षी दल को काम करने का अधिकार कहां दिया गया है? एक और छोटी सी बात की ओर आपका ध्यान दिलाने के लिए मुझे इतना ही कहना है कि खुद कांग्रेस एक ऐसा लोकतंत्रीय संगठन है, जहां यह संभव होता है कि राजाजी जैसे लोग एक आशय का संशोधन पेश करते हैं और हमारे जैसे लोग एक बिल्कुल भिन्न आशय का संशोधन पेश करते हैं। फिर भी हम उन संशोधनों को ग्रहण कर हम उन पर विचार करते हैं और उन पर ऐसा फैसला करते हैं जो प्रजातंत्र मूलक होता है और जिसे सभी दल मंजूर कर लेते हैं। हमें तो यह संभव बनाना है कि भिन्न-भिन्न दल इस देश में काम कर सकें। इस बात पर तो हम सभी एक राय हैं। यह बात हमारे लिए बाहर से आया हुआ कोई नया विचार नहीं है। सभा को और सम्बन्धित सदस्य को मैं जिस बात की याद दिलाना चाहता हूं वह यह है कि उस देश में, जिसे हम सब आदर्श स्वरूप समझते हैं, विपक्षी दल को काम करने की गुंजाइश कहां? क्या वहां विपक्षी दल के लिए कोई गुंजाइश है भी? वस्तुत: सोवियत रूस में लोगों को यह आजादी नहीं है कि वे अपना स्वतंत्र मजदूर-संघ संगठित कर सकें। हमें इस देश में यह अधिकार पहले ही से प्राप्त है और इस महान् पत्र में हम इन अधिकारों को संक्षेप में सन्निहित कर रहे हैं। आप प्रत्येक दृष्टिकोण से इस पर विचार कीजिये और आप देखेंगे कि इस दस्तावेज में इस देश में सर्वसाधारण को उससे भी ज्यादा प्रजातंत्रीय उदार, व्यापक और मौलिक अधिकारों को देने की बात कही गयी है, जो किसी भी देश में यहां तक कि सोवियत रूस में भी सर्वसाधारण को प्राप्त नहीं है।

मेरे माननीय मित्र डॉ. कुंजरू ने एक और बात कही है और वह यह है कि इन अधिकारों में से बहुतेरे न्याय नहीं हैं। मैं कानूनदां नहीं हूं और इसलिए

इस प्रश्न के कानूनी पहलू पर मैं नहीं जाना चाहता। कुल मिलाकर मेरा यही कहना है कि क्लाज 22-1 और 22-2 पर मुझे परम संतोष है। इन क्लाजों में साधारण नागरिकों को यह अधिकार दिया गया है कि मैं इस भाग में, जिन मौलिक अधिकारों की गारंटी दी गयी है उनमें से किसी भी अधिकार को अमली रूप दिलाने के लिए वह नियमानुसार सर्वोच्च अदालत से दरख्वास्त कर सकता है। यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण विशेष अधिकार है जो हमारे नागरिकों को दिया जा रहा है। एकमात्र और विशेषाधिकार, जो मैं नागरिकों को दिलाना चाहता था, वह यह है, जैसा मैं पहले एक मौके पर कह चुका हूं, कि उन नागरिकों को जो इतने गरीब हैं कि सर्वोच्च अदालत से दरख्वास्त नहीं कर सकते, उचित संरक्षण के साथ राज्य के खर्चे से दरख्वास्त दिलाने का हक मिलना चाहिए। इन तमाम व्यवस्थाओं के बावजूद भी डॉ. कुंजरू ने यह फरमाया है कि इन मौलिक अधिकारों का असली मतलब ही खत्म हुआ जा रहा है और मिस्टर लाहिरी भी उनसे सहमत हैं, दरअसल यह बड़ी ही मजेदार बात है कि उदारवादिता और समाष्टिवादिता इस तरह मिलकर एक हो गए हैं। हमें इस बात का अनुभव है कि जन सुरक्षा आर्डिनेंस (Public Safety Ordinance) इस देश में किस तरह अमल में लाया गया था। हम जानते हैं कि ये आर्डिनेंस बड़े ही मनमाने थे और इनके जरिये शासन प्रबन्ध (Executive) को असीम मनमाने और भयानक अधिकार दिये गए थे। क्या अब हमको उसी तरह यह कहा जायेगा कि हमें इन नियमों को रखने की कतई जरूरत नहीं है? अधिकार केवल सरकार को सौंप देने चाहिएं और इस या उस क्लाज के मातहत जो भी हुक्म जारी किये जायें उन पर किसी भी अदालत में कोई सवाल न उठाया जाये। ऐसा ही तो दिखाई देता है। हमें जेलों में रोका गया और हमें रोकने के लिए जो हुक्म जारी किया गया उस पर किसी अदालत में कोई सवाल नहीं किया जा सकता था। पर इसके बावजूद भी ऐसे योग्य और सज्जन न्यायाधीश थे—कलकत्ता हाईकोर्ट और मध्यप्रान्त के माननीय न्यायाधीश—जिनमें निजी विवेक पर चलने का साहस था और जो इन आर्डिनेंसों और पब्लिक सेफ्टी एक्ट के शब्दों के सही मतलब को समझ सके और तथाकथित विशेष न्यायालयों के फैसलों को रद्द कर बहुतों को फांसी के तख्ते से बचा पाये। इसी तरह जब यह दस्तावेज हमारे वैधानिक कानूनों का एक हिस्सा बन जायेगा तो ऐसा हो सकता है और होगा। यह दस्तावेज इतनी सावधानी से बनाया गया है कि इसके जरिये देश के सर्वसाधारण नागरिकों को मनमाने अधिकार नहीं दिए गए हैं बल्कि ऐसे ही अधिकार दिए गए हैं जिनका नागरिक व्यक्तिगत या सामूहिक तौर पर अपने संस्था संबंधी या संगठन सम्बन्धी अधिकारों के रूप से समुचित प्रयोग कर सकें। उनके जरिये नागरिकों को यथासंभव इतने अधिकार दिये गये हैं कि व्यक्तियों, संगठनों और संस्थाओं को हर समय संरक्षण और सुरक्षा प्राप्त हो सके। इसीलिए यह नियम इन अधिकारों को व्यर्थ न बना पायेंगे। ये नियम इस अभिप्राय से रखे गये हैं कि ये हमारे प्रजातंत्र को गिरने, दूषित होने और तानाशाही में बदलने से बचा सकें। उन अधिकारों को इस अभिप्राय से रखा गया है कि यह हमारे नागरिकों

[प्रो. एन.जी. रंगा]

को—कानून मानकर चलने वाले और प्रजातंत्र में विश्वास रखने वाले नागरिकों की—उन लोगों से रक्षा हो सके जो विश्वास तो रखते हैं तानाशाही में, पर दिखावा करते हैं प्रजातंत्र की समुन्नति के लिए काम करने का, जिससे कि वे अपनी तानाशाही स्थापित कर सकें।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि बहस बंद की जाये।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस प्रस्ताव पर हम काफी बहस कर चुके हैं; अब इस पर राय ली जाये।

(प्रस्ताव मंजूर हुआ)

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** अध्यक्ष महोदय, जब मैंने उस रिपोर्ट पर विचार करने के लिए अपना प्रस्ताव उपस्थित किया था, तो मैंने इस प्रश्न पर किसी लम्बी बहस की उम्मीद न की थी। मैंने सोचा था कि उन वाक्यांशों पर छानबीन करने की अगर जरूरत हुई और कुछ वाक्यांश आपत्तिजनक समझे गये तो उन्हें हटाने का तथा जरूरत के मुताबिक उनको और अच्छा बनाने का हमें काफी मौका मिलेगा। अब चूंकि वाद-विवाद हो चुका है; मैं सभा के सामने समिति की कार्यवाही की कुछ बातों को रख देना चाहता हूं जिससे सभा को यह मालूम हो जायेगा कि यह रिपोर्ट न तो अटकल पच्चू अथवा बनावटी या बेबनावटी रिपोर्ट है। यह रिपोर्ट खूब सोच समझकर तैयार की गयी है। समिति में दो विचारधाराओं के लोग थे और उसमें ऐसे प्रमुख कानूनी बेलाओं की एक खासी संख्या थी, जिन्होंने गम्भीर आलोचक की दृष्टि से रिपोर्ट के प्रत्येक वाक्य के प्रत्येक शब्द की यहां तक कि विराम और अर्धविराम की भी पूरी छानबीन की। दोनों विचारधाराओं के सदस्यों ने दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से इस पर विचार किया। एक विचारधारा के लोगों की यह राय थी कि यथासंभव अधिक से अधिक अधिकार रिपोर्ट में शामिल किये जायें, ऐसे अधिकार जिन पर अदालत के जरिये अमल कराया जा सके और जिनके आधार पर नागरिक बिना किसी कठिनाई के न्यायालय में जाकर अपने अधिकारों को व्यवहारिक रूप दिला सकें। दूसरी विचारधारा के सदस्यों का यह मत था कि मौलिक अधिकारों को चन्द ऐसी ही बातों तक सीमित रखा जाये जो मौलिक समझी जाती हों। इन दोनों विचारधाराओं के प्रतिनिधियों में बहुत बहस हुई और अन्त में इन दोनों के बीच समझौते को एक रेखा निश्चित की गयी जो बहुत ही सुंदर समझी गयी थी। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि चूंकि यह रिपोर्ट अन्तर्कालीन रिपोर्ट कही जा रही है इसलिए दूसरी रिपोर्ट बहुत बड़ी होगी या इसमें बहुत सी और आवश्यक बातों का सन्निवेश होगा। वस्तु-स्थिति को देखते हुए यह नहीं हो सकता कि मुख्य रिपोर्ट जो सभा के सामने पेश है उसमें कम महत्त्व की बातें हों। हर आवश्यक बात इस रिपोर्ट में शामिल कर दी गयी है। पर अभी एक और रिपोर्ट है जिस पर हमें अभी विचार

करना है, और वह है उन मौलिक अधिकारों पर जो गैर-न्याय हैं। हो सकता है कि इसमें कुछ बातें छूट गयी हों जो सभा की निगाह में आयें या जिन पर बाहर से कोई सुझाव आयें और उन पर विचार करना हो। और सम्भव है कमेटी उन पर विचार करे। परंतु मैं सभा को सूचित कर देना चाहता हूं कि यह रिपोर्ट तीन कमेटियों से गुजर चुकी है। हां, यह सच है कि तीसरी विचारधारा के लोग कमेटियों में अनुपस्थित थे। इस विचारधारा के लोग यह चाहेंगे कि स्वतंत्र भारत के लिए जिन मौलिक अधिकारों की व्यवस्था हो रही है उनमें न तो पुलिस होना चाहिए और न जेल; न तो प्रेस पर कोई प्रतिबंध होना चाहिए और न पुलिस को लाठी और बंदूक के प्रयोग का ही हक होना चाहिए। भारत में सबको इस बात की स्वतंत्रता होनी चाहिए कि जो चाहें करें, इस विचारधारा के लोग कमेटी में अनुपस्थित थे। पर अन्य दो विचारों के लोग जिन्होंने इस रिपोर्ट पर विचार किया, उन्होंने न सिर्फ एक देश के मौलिक अधिकारों का अध्ययन किया बल्कि संसार के प्रायः सभी देशों के मौलिक अधिकारों का अध्ययन किया। संसार के सारे विधानों का अध्ययन कर इस नतीजे पर पहुंचे कि इस रिपोर्ट में हमें यथासम्भव उन सभी अधिकारों को शामिल करना चाहिए जो उचित समझे जा सकते हैं। इस बात पर इस सभा में मतभेद हो सकता है और सभा को अधिकार है कि वह प्रत्येक वाक्यांश पर गम्भीर आलोचना की दृष्टि से विचार करे और इसमें परिवर्तन, संशोधन या घटाव का सुझाव दें। पर जो बात मैंने सभा के सामने पेश की, वह यह है कि इस रिपोर्ट पर विचार किया जाये। मैं समझता था कि किसी लम्बे भाषण की जरूरत नहीं है और इसलिए मैंने सुझाया था कि जो कुछ भी विचार करने हैं या सुझाव रखने हैं उन्हें उस समय पेश किया जा सकता है जब वाक्यांशों पर विचार आरम्भ हो। जैसा कि मैंने सभा को बताया था करीब 150 संशोधन आये हैं और यद्यपि उसके लिए प्रायः 10 घंटे का ही समय दिया गया था। इस सभा में बड़े-बड़े अध्ययन परायण बड़े-बड़े दूरदर्शी और बहुश्रुत सदस्य हैं और इसलिए सभा को इस बात का श्रेय है कि इतने अल्पसमय में भी हमें 150 संशोधन प्राप्त हो सके हैं। मै समझता हूं कि अगर हम इसी तीव्र गति से चलते रहे तो हम आशातीत दीर्घकाल तक बहस करेंगे। इसलिए मेरा सुझाव है कि रिपोर्ट पर बहस की जाये और अगर मेरा यह सुझाव मंजूर होता है तो हम एक-एक करके प्रत्येक खण्ड पर विचार करेंगे।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है—

> ''यह विधान-परिषद् अपने 24 जनवरी सन् 1947 ई. के प्रस्ताव द्वारा नियुक्त एडवाइजरी कमेटी से प्राप्त मौलिक अधिकार विषयक रिपोर्ट पर विचार करे''

अब हम रिपोर्ट पर खण्ड व खण्ड विचार आरम्भ करते हैं।

खण्ड 1

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** खण्ड 1 एक व्याख्यामूलक खण्ड है।

[माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल]

जब कि संदर्भ में अन्यथा न हो—

1. स्टेट शब्द के अंतर्गत यूनियन तथा इकाइयों की धारा सभायें और हुकूमतें, तथा संघ यूनियन की राजभूमि के अंदर वाले सभी स्थानीय और अन्य अधिकारी शामिल हैं।
2. संघ का अर्थ है भारतीय संघ।
3. यूनियन के कानून इसके अंतर्गत यूनियन की धारा सभा द्वारा बनाया कानून तथा यूनियन और उसके किसी भाग में चालू वर्तमान भारतीय कानून भी शामिल हैं।

मैं नहीं समझता कि इस खण्ड के समर्थन के लिए किसी भाषण की जरूरत है। इसलिए रस्मी तौर पर मैं इसे सभा के सामने विचारार्थ पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** इस खण्ड पर कई संशोधनों की सूचनायें मुझे मिली हैं। पहला है श्री कामत का।

***श्री के.एम. मुंशी:** इस खण्ड पर कई जबानी संशोधनों की सूचना मैंने दी है। सूचना मैं आज सुबह ही दे आया हूं और अगर कृपा करके मुझे अवकाश दे....।

***कुछ सदस्य:** और जोर से बोलिए, जनाब!

***श्री के.एम. मुंशी:** इस खण्ड पर कई मौलिक संशोधनों की सूचना मैंने कार्यालय को दी है और ये संशोधन मैं आपके सामने पेश कर चुका हूं। अपने नियमों के अनुसार मैं उन्हें पेश करने की इजाजत चाहता हूं। ये संशोधन सारपूर्ण नहीं हैं इनमें चन्द शाब्दिक परिवर्तन ही सुझाये गये हैं। यदि कृपया आप अनुमति दें तो मैं उन्हें भी पेश कर दूं।

***अध्यक्ष:** मुझे डर है कि इन संशोधनों को मैंने देखा नहीं है। पर अगर वे जबानी संशोधन ही हैं तो मैं समझता हूं कि इनके पेश किये जाने में सभा को कोई आपत्ति न होगी। मगर मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी सारपूर्ण संशोधन को बिना समुचित सूचना के मैं नहीं पेश होने दे सकता।

(श्रीयुत मुंशी को सम्बोधित करके) आपके संशोधनों को मैं थोड़ी देर बाद लूंगा क्योंकि शायद श्री कामत के या अन्य किसी के संशोधन के अन्दर ये आ जायें।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** इस खण्ड पर भी संशोधन आये हैं, क्या?

***अध्यक्ष:** दो माननीय सदस्यों की ओर से मुझे संशोधनों की सूचनायें मिली हैं।

***श्री के.एम. मुंशी:** पेश्तर इसके कि श्री कामत अपना संशोधन पेश करें मैं

यह कहना चाहता हूं कि खण्ड 1 (1) पर मेरा केवल जबानी संशोधन है। अगर इसे पेश करने दिया जाता है तो इससे जो कुछ भी संदेह रह गया होगा, वह जाता रहेगा।

***अध्यक्षः** *(श्री मुंशी से)* आप अपना संशोधन रख सकते हैं।

***श्री के.एम. मुंशीः** मैं प्रस्ताव करना चाहता हूं कि वाक्यांश 1 के उपवाक्यांश 1 में ''states'' और ''includes'' शब्दों के बीच में ''for the purpose of this Annexure''रख दिये जायें, इस संशोधन का कारण स्पष्ट है। परिशिष्ट में भाषा की सुविधा के विचार से हमें 'स्टेट' शब्द रखना पड़ता है। यहां और केवल इस परिच्छेद में भाषा सम्बन्धी सुविधा के विचार से 'स्टेट' शब्द का प्रयोग किया गया है। अगर इसे ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है तो इससे सम्भवतः यह धारणा पैदा हो सकती है कि विधान कानून (Constitution Act) में यह 'स्टेट' की व्याख्या है। इसलिए मेरा कथन है कि 'इस परिशिष्ट' (for the purpose of this Annexure) यानी इस परिशिष्ट की प्रारम्भिक रिपोर्ट के लिए मेरे ये शब्द रख दिये जायें।

***एक सदस्यः** उस हालत में इस खण्ड का स्वरूप क्या होगा?

***अध्यक्षः** तब वाक्यांश 1 का उपवाक्यांश (1) यों पढ़ा जायेगा—

> ''इस परिशिष्ट में 'स्टेट' शब्द के अन्तर्गत यूनियन की धारा सभायें और उसकी हुकूमतें भी शामिल हैं—इत्यादि इत्यादि''

(श्री मुंशी को सम्बोधित करके) दूसरे स्थानों पर परिशिष्ट (Annexure) की जगह भाग (part) का प्रयोग हुआ है।

***श्री के.एम. मुंशीः** मैं उसे स्वीकार कर लूंगा।

***अध्यक्षः** तब उपवाक्यांश (1) यों पढ़ा जायेगा—

> ''इस भाग में स्टेट शब्द में यूनियन की धारा सभायें और उसकी हुकूमतें भी शामिल हैं—इत्यादि।''

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** मेरा कहना है कि श्रीयुत मुंशी के संशोधन को हम प्रथम वाक्य के प्रारम्भ में ही खूब खुशी के साथ रख सकते हैं, जिससे कि उस खण्ड की तीनों व्याख्यायें इसके अन्तर्गत आ जायें। हम यों रख सकते हैं—

> ''जब तक कि संदर्भ में अन्यथा न हो और इस भाग में'' और फिर इसके बाद वाक्यांश में दी हुई शर्त रखें।

***अध्यक्षः** बजाय इसके कि हम स्टेट शब्द के बाद 'इस भाग में' इन शब्दों को रखें, हम उन्हें शुरू में रख दें। उस हालत में वाक्यांश यों पढ़ा जायेगा—

[अध्यक्ष]

'इस भाग में' जब तक संदर्भ में अन्यथा आवश्यक न हो।

1. स्टेट शब्द के अन्तर्गत यूनियन तथा इकाइयों की धारा सभायें और हुकूमतें इकाइयों और यूनियन की राज्य भूमि के अन्दर वाले सभी स्थानीय और अन्य अधिकारी भी शामिल हैं....इत्यादि।

***श्री के.एम. मुंशी:** मुझे कोई आपत्ति नहीं है। अध्यक्ष महोदय, जहां भी 'यूनियन' शब्द आया है उसका मतलब है भारतीय यूनियन से।

***श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): संशोधन केवल स्टेट शब्द की व्याख्या के सम्बन्ध में है और किसी अन्य व्याख्या के सम्बन्ध में नहीं।

***अध्यक्ष:** श्री मुंशी के संशोधन को मैंने जिस रूप में रखा है उसे प्रस्ताव-कर्त्ता ने मंजूर कर लिया है। क्या सभा इस संशोधन को स्वीकार करती है?

संशोधन मंजूर हुआ।

***श्री के.एम. मुंशी:** वाक्यांश 1 उपवाक्यांश (3) के सम्बन्ध में मेरा केवल एक शाब्दिक संशोधन है। उपवाक्यांश (3) कहता है—

'यूनियन कानून' के अन्तर्गत यूनियन की धारा सभा द्वारा बनाये कानून तथा यूनियन और उसके किसी भाग में चालू वर्तमान भारतीय कानून भी शामिल हैं।

यहां मैं 'as in force' का 'as' शब्द हटाना चाहता हूं।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***श्री के.एम. मुंशी:** बहुत से सदस्यों ने ऐसा समझा था कि यहां 'as' रखने से यह मतलब होगा कि ऐसे कानून जो चलन पा गये हों, अगर ऐसा मतलब नहीं होता है तो यह शब्द हटाया जा सकता है।

***श्री प्रमथ रंजन ठाकुर:** अध्यक्ष महोदय, यूनियन के कानून में यूनियन का बनाया हुआ हर कानून शामिल है। कभी-कभी यूनियन का शासन प्रबन्ध (Executive) ऐसी आज्ञा भी जारी कर सकता है जो कानून की तरह हों। मैं समझता हूं कि यूनियन के शासन प्रबन्ध के द्वारा जारी की हुई आज्ञायें भी इस वाक्यांश में जरूर शामिल होनी चाहिएं।

***अध्यक्ष:** क्या आपने कोई संशोधन रखा था?

***श्री प्रमथ रंजन ठाकुर:** नहीं, यह संशोधन नहीं है।

***अध्यक्ष:** श्री मुंशी का संशोधन यह है कि 'as' शब्द हटा दिया जाये और प्रस्तावकर्त्ता ने इसे मान लिया है। क्या मैं यह समझ लूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करती है?

यह संशोधन मंजूर हुआ।

***अध्यक्षः** अब मि. कामत अपना संशोधन पेश करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, संशोधन भेजने के बाद मुझे मालूम हुआ कि जिन पारिभाषिक शब्दों की व्याख्यायें इस खण्ड में दी गई हैं वे वर्णानुक्रम से रखी गयी हैं। और मुझे यह भी बताया गया है कि व्याख्या के सम्बन्ध में वर्णानुक्रम के सिलसिले को ही प्रधानता दी जाती है। इस हालत में मैं अपना संशोधन नहीं पेश करना चाहता और इसे वापिस लेने की सभा से अनुमति चाहता हूं।

***अध्यक्षः** डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी** (बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मि. मुंशी के संशोधन को देखते हुए यह आवश्यक नहीं है कि मैं अपना संशोधन रखूं।

***अध्यक्षः** श्री चौधरी अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***श्रीयुत रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करने की अनुमति चाहता हूं कि खण्ड 1 में निम्नलिखित नयी व्याख्यायें रखी जायें।

4 'स्कूल' का अर्थ है कोई 'शिक्षा संस्था'।

मौलिक अधिकार सम्बन्धी इन वाक्यांशों में हम भिन्न-भिन्न स्थानों पर 'स्कूल' और 'शिक्षा संस्थायें' दोनों का ही प्रयोग पाते हैं। इससे यह धारणा होती है कि दोनों में कुछ अन्तर रखा जाये। मैं चाहता हूं कि यह स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया जाये कि स्कूल से हमारा मतलब है, शिक्षा-संस्थाओं से। मैं हवाला दे रहा हूं वाक्यांश 18 के उपवाक्यांश (2) का जहां यह कहा गया है:

> ''किसी भी अल्पमत के लिए चाहे वह धर्म, जाति या भाषा के आधार पर बनी हो, राज्य की शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पाने के सम्बन्ध में कोई भेदभाव न बरता जायेगा और न धार्मिक शिक्षा ही उसके लिए अनिवार्य बनाई जायेगी।

उपवाक्यांश (3) (क) में यह कहा गया है:

> ''सभी अल्पमतों को चाहे वे धर्म, जाति या भाषा के आधार पर बने हों, हर प्रदेश (इकाई) में इस बात की स्वतंत्रता प्राप्त होगी कि वे अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा संस्थायें स्थापित करें और उनका प्रबन्ध करें।''

यहां हमने शिक्षा संस्थाओं का प्रयोग किया है और उपवाक्यांश 3 (ख) में स्कूल शब्द का प्रयोग किया गया है:

> ''इन स्कूलों को जिनका प्रबन्ध धर्म, जाति या भाषा के आधार पर बने हुए अल्पमत के हाथ में हो, राजकीय सहायता देने में कोई भेदभाव नहीं बरता जायेगा।''

[श्रीयुत रोहिणी कुमार चौधरी]

इससे भ्रम पैदा होने की सम्भावना है और संशोधन उसी अभिप्राय से रखा गया है कि यह भ्रम न हो।

स्कूलों में भी हमें अपने अधिकारों की रक्षा करनी है, अध्यक्ष महोदय। कुछ आप सरीखे छात्र पढ़ने में बहुत तेज होते हैं। और सभी परिस्थितियों को हस्तगत कर लेते हैं। ऐसे भी लोग हैं जिन्हें अपने स्कूल के जमाने की एक जुदा ही किस्म की याद है। बैंच पर खड़े होना, फर्श पर खड़े होना, फर्श पर घुटना टेककर बैठना, बैंच के नीचे घुटने के बल बैठना, इस तरह की कितनी ही बातें उन्हें याद हैं। वे नहीं चाहते कि उन चीजों की पुनरावृत्ति हो क्योंकि यहां खण्ड में सभी बातें साफ-साफ नहीं बताई गयी हैं। स्कूलों और सभी शिक्षा संस्थाओं पर ये लागू होने चाहिए। इसलिए मेरा सुझाव है कि यह बात यहां दर्ज कर दी जाये कि स्कूल का अर्थ है, शिक्षा संस्था से।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): वाक्यांश 18 (3) (ब) 'स्कूल' शब्द का प्रयोग वाक्यांश के अर्थ को संकुचित करने के लिए नहीं किया गया है बल्कि इसलिए किया गया है कि अन्य शिक्षा संस्थाओं से वह भिन्न है। यह बात साफ हो जाये। मेरा ख्याल है कि हम इस प्रश्न पर उस समय विचार कर सकते हैं जब हम खंड 18 पर पहुंचे। उपवाक्यांश (3) (ख) वस्तुतः प्रारम्भिक शिक्षा पद्धति के सम्बन्ध में लागू करने के उद्देश्य से ही बनाया गया था।

***अध्यक्ष:** तो मैं संशोधन पर मत लूं।

संशोधन यह है:—उसका एक हिस्सा कि वाक्यांश 1 में निम्नलिखित व्याख्यायें जोड़ दी जायें:

'स्कूल का अर्थ है शिक्षा संस्थाओं से'

यह संशोधन नामंजूर हुआ।

***श्रीयुत रोहिणी कुमार चौधरी:** संशोधन का दूसरा हिस्सा अस्पृश्यता की व्याख्या करता है। यहां साफ तौर पर कहा जा सकता है कि:

> ''अस्पृश्यता का अर्थ है ऐसा कोई काम जो धर्म या जातिगत भेदभाव के आधार पर किया जाये जो उन जायज पेशों के भेदभाव के आधार पर किया जाये जिनका जिक्र खंड 4 में आया है।''

महोदय, मौलिक अधिकारों के सिलसिले में यह बात कही गयी है कि अस्पृश्यता किसी भी शक्ल में कानूनन दंडनीय अपराध माना जायेगा। इस स्थिति में, यह आवश्यक है कि अपराध की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए। अपनी मौजूदा सूरत में 'अस्पृश्यता' शब्द बड़ा अस्पष्ट है। उसकी व्याख्या उसी तरह से की जानी चाहिए, जैसा मैंने बताया है या किसी और अच्छे ढंग पर, जैसा कि सभा तय करे।

श्री एस.सी. बनर्जी (बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, 'अस्पृश्यता' शब्द की व्याख्या आवश्यक है, हम गत 25 वर्षों से इस शब्द का प्रयोग करने के

अभ्यस्त हो गये हैं फिर भी इस बात को लेकर बहुत बड़ा भ्रम है कि इसका अर्थ क्या है? कभी-कभी केवल एक ग्लास पानी ग्रहण कर लेना ही अस्पृश्यता मानी गयी है। कभी-कभी इसका प्रयोग हुआ है हरिजनों के मन्दिर प्रवेश के सिलसिले में। कभी-कभी अंतर्जातीय भोज और अंतर्जातीय विवाह के सिलसिले में इसका प्रयोग किया गया है। महात्मा गांधी ने जो इसके प्रधान व्याख्याकर्त्ता हैं, भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न अर्थ में इसका प्रयोग किया है। इसलिए, जब हम 'अस्पृश्यता' शब्द का प्रयोग करने जा रहे हैं तो; यह बात हमारे दिमाग में साफ तौर पर आ जानी चाहिए कि वस्तुतः इससे हमारा मतलब क्या है? इस शब्द का वास्तविक अभिप्राय क्या है? मेरी समझ में अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव इन दोनों में हमें कोई अन्तर न समझना चाहिए, क्योंकि जैसा कि श्री ठाकुर ने कहा है—अस्पृश्यता तो केवल लक्षण स्वरूप है, मूल कारण तो जातिगत भेदभाव ही है। और जब तक आप मूल कारण को ही नष्ट नहीं करते—अर्थात् तब तक आप जातिगत भेदभाव को दूर नहीं करते, अस्पृश्यता किसी न किसी रूप में अवश्य वर्तमान रहेगी। जब हम स्वतंत्र भारत का निर्माण करने जा रहे हैं तो हमें इस बात की आशा करनी ही चाहिए कि उस भारत में सभी लोग समान सामाजिक स्थिति का आनन्दोपयोग कर सकेंगे। यह दायित्व हम पर है कि हम इस बात को साफ कर दें कि भावी स्वतंत्र भारत में सामाजिक क्षेत्र में कोई भेदभाव न बर्ता जायेगा। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि जाति भेद अवश्य ही उठा दिया जायेगा। हां, इस बारे में कठिनाई जरूर है कि हम इसे न्याय अधिकार दे सकते हैं या नहीं। मैंने एक मुद्दत तक इस पर विचार किया है। मैं वस्तुतः विश्वास करता हूं कि अस्पृश्यता शब्द की जगह कोई भेदभाव सूचक और शब्द रखना चाहिए, या 'अस्पृश्यता' शब्द की स्पष्ट व्याख्या कर देनी चाहिए, ताकि इस संबंध में किसी को कोई संदेह न रह जाये कि इससे हमारा मतलब क्या है?

***श्री के.एम. मुंशीः** अध्यक्ष महोदय, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं। इस व्याख्या की वाक्य रचना ऐसी है कि इससे अगर यह स्वीकार कर ली गयी तो जन्म या जाति के आधार पर और यहां तक कि स्त्री पुरुष के आधार पर बरते गये भेदभाव को अस्पृश्यता माना जायेगा, यह व्याख्या क्या कहती है?

> ''अस्पृश्यता का अर्थ है ऐसा कोई काम जो धर्म या जातिगत भेदभाव के आधार पर किया जाये या जो इन जायज पेशों के भेदभाव के आधार पर किया जाये जिनका जिक्र खण्ड 4 में आया है।''

अध्यक्ष महोदय, खण्ड 4 में तो अस्पृश्यता पर बिल्कुल विचार ही नहीं किया गया है। यह खण्ड तो नौकरी या अन्य बातों से सम्बन्धित भेदभाव पर विचार करता है। प्रस्तुत व्याख्या से तो यह भेदभाव भी शामिल किया जा सकता है, जो स्पृश्य और अस्पृश्य के हैं अथवा जो एक प्रान्त और दूसरे प्रान्तों के लोगों में हैं। 'अस्पृश्यता' शब्द का जिक्र खण्ड 6 में आया है। 'अस्पृश्यता' शब्द जान बूझ कर उल्टे कामा के अन्दर यह बताने के लिए रखा गया है कि यूनियन की धारा सभा 'अस्पृश्यता' शब्द की व्याख्या करते समय उसी अर्थ में इस पर विचार

[श्री के.एम. मुंशी]

कर सके। जिस अर्थ में स्वभावत: यह समझा जाता है। वर्तमान संशोधन से 'अस्पृश्यता' शब्द की व्याख्या की सीमा और विस्तृत हो जायेगी, श्रीमान् मैं इसका विरोध करता हूं,

श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त (बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, चाहे मिस्टर रोहिणी कुमार चौधरी की व्याख्या स्वीकार की जाये या नहीं; मुझे ऐसा मालूम होता है कि कोई-न-कोई व्याख्या यहां रखनी ही चाहिए। यहां यह कहा गया है कि अस्पृश्यता किसी भी रूप में हो, अपराध है। एक मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश को जो अपराधों पर विचार करेगा, इसकी व्याख्या देखनी ही होगी। एक मजिस्ट्रेट किसी चीज को अस्पृश्यता समझेगा तो दूसरा किसी भिन्न बात को अस्पृश्यता मान सकता है और इसका परिणाम यह होगा कि ऐसे अपराधों के निर्णय के सम्बन्ध में मजिस्ट्रेट एकरूपता न रख पायेंगे। न्यायाधीश के लिए मामले का फैसला करना कठिन हो जायेगा। इसके अलावा अस्पृश्यता का भिन्न-भिन्न इलाकों में भिन्न-भिन्न अर्थ लिया जाता है। बंगाल में इसका एक अर्थ है तो दूसरे प्रान्त में इसका बिल्कुल दूसरा ही अर्थ हो सकता है। इसलिए जब तक इसकी व्याख्या नहीं हो जाती न्याय विभाग के लिए अस्पृश्यता के अंतर्गत आने वाले अपराधों पर निर्णय देना मुश्किल हो जायेगा। श्री रोहिणी कुमार चौधरी के संशोधन को स्वीकार करें या न करें, कोई न कोई व्याख्या यहां होनी ही चाहिए। इस प्रश्न को मस्विदा-कमेटी (Drafting Committee) पर छोड़ देना चाहिए कि वह अस्पृश्यता शब्द के लिए कोई उपयुक्त व्याख्या रखे ताकि सभा के सामने विचारार्थ वह पेश किया जा सके। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं सभा का ध्यान खण्ड 24 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जो कहता है—

> ''यूनियन की धारा-सभा इस भाग में दिये हुए उन नियमों को अमली रूप देने के लिए, जिनके लिए ऐसे कानून बनाने की जरूरत है, तथा उन कार्यों के विरुद्ध दंड निर्धारित करने के लिए जो इस भाग में अपराध घोषित किए गए हैं, पर अभी दंडनीय नहीं हैं, कानूनों का निर्माण करेगी।''

मैं समझता हूं कि यूनियन की धारा-सभा 'अस्पृश्यता' शब्द की व्याख्या कर देगी ताकि अदालतें समुचित दंड दे सकें।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापिस लिया गया।

***अध्यक्ष:** सभा की राय लेने के लिए मैं उसके सामने खंडों को एक-एक करके नहीं रखना चाहता। हम प्रत्येक खंड पर विचार करेंगे। और फिर सभा किसी निर्णय पर पहुंचेगी। जब समूचा विधान तैयार हो जायेगा तो इन नियमों पर पुनर्विचार किया जायेगा। फिर जो कुछ हो चुका होगा और होगा उसको दृष्टि में रखकर

उपयुक्त परिवर्तन किये जायेंगे, ताकि दोनों हिस्सों में कोई असामंजस्य या परस्पर विरोध न रह जाये। इसलिए सभा को अभी शब्दों की बारीकी पर सावधान होने की जरूरत नहीं है।

माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः अब दुबारा बहस न होगी और न सारी बातों पर पुनर्विचार करने का हक होगा। हां, वाक्य-रचना को दृष्टि में रखकर भिन्न-भिन्न खंडों में केवल सामंजस्य या समरूपता जरूर स्थापित की जायेगी।

***अध्यक्षः** मैं यह सुझाव नहीं दे रहा हूं कि दोबारा बहस हो या एक-एक करके क्लाजों पर फिर विचार किया जाये। जब सारा मस्विदा आ जायेगा तो हम देखेंगे कि हर खंड अपनी-अपनी जगह पर ठीक हो और उनमें परस्पर कोई वैपरीत्य न हो। मैं समझता हूं कि इस आशय से सभा एक-एक करके खंडों पर बाद में विचार कर सकती है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** अध्यक्ष महोदय, एक जानकारी पाना चाहता हूं मैं यह जानता हूं कि क्या ये नियम अधिकार-पत्र (Bill of Rights) की तरह किसी अलग पत्र में सन्निहित होकर सभा के सामने पेश होंगे? अगर यह बात है तो फिर अभी इन संशोधनों पर विचार करना आवश्यक है।

***अध्यक्षः** फिलहाल हम इसी बात पर विचार कर रहे हैं, जैसा कि मैंने बताया है कि हम अन्त में यही देखेंगे कि खण्डों में कोई वैपरीत्य या विरोध न रह जाये, यह नहीं कि हम सारे क्लाजों पर फिर से बहस करेंगे।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): तो अब आपको श्रीमान् यह कहना है कि खण्ड 1 स्वीकार किया जाये।

***अध्यक्षः** मैं बाजाब्ता राय नहीं दे रहा हूं क्योंकि उस हालत में इस पर बाद में पुनर्विचार नहीं किया जा सकता। इसलिए अभी एक-एक करके इन खण्ड पर विचार कर रहा हूं।

माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः अध्यक्ष महोदय, जब तक सभा इस बात को स्वीकार न कर ले, यहां सारी रिपोर्ट पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। समूची रिपोर्ट पर विचार हो जाने के बाद यह स्वयं सिद्ध है कि इसमें आवश्यक परिवर्तन किये जायेंगे। परन्तु अगर आप बिना मत लिए सारे रिपोर्ट पुनर्विचार के लिए छोड़ देते हैं तो फिर इस रिपोर्ट पर अभी विचार करने की तो कोई बात नहीं है।

***श्री एन.वी. गाडगिल** (बम्बई : जनरल): क्या वोट या राय का यह मतलब है कि यह आखिरी तौर पर मंजूर कर लिया गया और इसमें आगे किसी सुझाव की कोई गुंजायश नहीं है? यहां तक कि सिद्धांत के सम्बन्ध में भी कोई सुझाव नहीं रखा जा सकता।

***श्री के. सन्तानम्:** कुछ नियमों को बाद में बतलाया जा सकता है और आप सभा के किसी भी परिवर्तन के लिए कह सकते हैं, परन्तु इन क्लाजों को हम यहां स्वीकार कर लें।

***अध्यक्ष:** सभा को यह हक है कि अपने ही फैसले पर वह फिर से गौर करे और इस तरह आज हम जो भी फैसला करते हैं उस पर हम पुनर्विचार कर सकते हैं। पर मैं यह सुझाव दे रहा था कि बिना पुनर्विचार किये ही हम बाद में आवश्यक परिवर्तनों के द्वारा खण्डों के परस्पर वैपरीत्य को दूर कर सकते हैं, हर हालत में हम खण्ड 1 पर मत लेंगे।

सवाल यह है कि खण्ड 1 अपने संशोधित स्वरूप में स्वीकार किया जाये।

खण्ड 1 स्वीकृत हुआ।

क्लाज 2

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि क्लाज 2 स्वीकार कर लिया जाये। यह क्लाज इस रूप में है:

> ''यूनियन के प्रदेशों में जारी सारे मौजूदा कानून, नोटिफिकेशन (विज्ञप्तियां), रेग्युलेशन, आश्वासित प्रथाएं अथवा चलन, जो उन अधिकारों के प्रतिकूल होंगे जिनकी गारन्टी विधान के इस भाग में दी हुई हैं, इस प्रतिकूलता की हद तक रद्द माने जायेंगे और न यूनियन अथवा उसका कोई यूनिट ही ऐसा कोई कानून बनायेगा, जिससे ऐसा कोई अधिकार छिन जाये या कम हो जाये।''

यदि हम एक मूल अधिकार को कानूनी निर्णय के योग्य (न्याय-क्षम) रखते हैं, तो इसका यह मतलब नहीं कि यह एक आवश्यक निष्कर्ष है। किन्तु इस सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान रिपोर्ट के 7वें पैरे की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जिसमें कहा गया है:

> ''क्लाज 2 में दिया गया है कि यूनियन के प्रदेशों में जारी किये गये सारे मौजूदा कानून, नोटिफिकेशन (विज्ञप्तियां), रेग्युलेशन अथवा चलन, जो मूल अधिकारों के प्रतिकूल होंगे, इस प्रतिकूलता की सीमा तक रद्द माने जायेंगे। यद्यपि अपने सोच-विचार तथा कार्यवाही के दौरान में, हमने मौजूदा कानून की व्यवस्थाओं को ध्यान में रखा है, किन्तु समस्त मौजूदा कानूनों पर इस क्लाज से पड़ने वाले असर के सम्बन्ध में सविस्तार जांच करने के लिए हमें काफी समय नहीं मिला। हमारी सिफारिश है कि इस क्लाज को अन्तिम रूप से विधान में शामिल करने से पहले ऐसी जांच करा ली जाये।''

अतएव, इस क्लाज के सम्बन्ध में अभी यह जांच की जाने को है कि मौजूदा कानूनों पर उसका क्या असर पड़ेगा और विधान का अन्तिम मस्विदा तैयार हो

जाने तथा इस क्लाज के अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिये जाने से पहले ऐसा हो जाना चाहिये।

श्रीमान् मैं प्रस्ताव रखता हूं।

***श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी सरदार पटेल के एक सुझाव के आधार पर कुछ संशोधित रूप में उसे रखूंगा। मैं प्रस्ताव करता हूं कि क्लाज 2 में ''और न यूनियन अथवा उसका कोई यूनिट ही ऐसा कोई कानून बनायेगा, जिससे ऐसा कोई अधिकार छिन जाये या कम हो जाये'' शब्दों की जगह, निम्नलिखित शब्द रखे जायें:

> ''और बिना विधान संशोधन किये, ऐसा कोई अधिकार न तो छीना जायेगा और न कम किया जायेगा।''

इसका सिर्फ यही कारण है कि यदि इस क्लाज को उसके वर्तमान रूप में ही रहने दिया गया, तो इन अधिकारों में से किसी अधिकार के असंतोष-जनक अथवा असुविधाजनक सिद्ध होने पर, हम, विधान में संशोधन करके भी उसमें कोई परिवर्तन न कर सकेंगे। कुछ विधानों के अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था रखी गई है कि उस विधान के कुछ भाग भावी वैधानिक संशोधनों द्वारा परिवर्तित किये जा सकें और अन्य भाग न परिवर्तित किये जा सकें। इस प्रकार के संदेहों से बचने के लिए, मैंने इस संशोधन का प्रस्ताव रखा है मुझे आशा है कि वह स्वीकार किया जायेगा।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** श्रीमान्, मैं यह संशेधन स्वीकार करता हूं।

***श्री प्रमथ रंजन ठाकुर:** श्रीमान्, शब्द इस प्रकार हैं—''और न यूनियन अथवा उसका कोई यूनिट ही'' आदि। पहले क्लाज में ''यूनियन'' की परिभाषा तो दी गई है, पर ''यूनिट'' की नहीं दी गई। ''यूनिट'' की परिभाषा भी दे दी जानी चाहिये।

***अध्यक्ष:** ''यूनिट'' शब्द, श्री संतानम् के संशोधन में नहीं आता; इसलिए यह प्रश्न नहीं उठता।

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकोल्स राय** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, हम समझते हैं कि प्रांतीय विधान भी होंगे और हर प्रांत अपना विधान स्वयं तैयार करेगा। यदि ऐसी बात है, तो एक प्रांत से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी कानून का संशोधन, यूनियन के बजाय प्रांतों के जिम्मे छोड़ दिया जाना चाहिये। प्रांतीय कानून में संशोधन करने का अधिकार, स्वराज्य-प्राप्त प्रांत को अवश्य मिलना चाहिये। यदि यह सच है, जैसा कि हम अब समझते हैं, कि यूनियन के जिम्मे रक्षा, वैदेशिक मामले तथा यातायात जैसे केवल कुछ ही विषय रहेंगे, तो हम नहीं चाहते कि कोई प्रांतीय अधिकार किसी मूल अधिकार द्वारा सीमित कर दिया जाये अथवा प्रांत का कोई भी अधिकार भारत की यूनियन द्वारा छीन लिया जाये। इसलिए मैं

[माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकोल्स राय]

समझता हूं कि यह संशोधन खतरनाक सिद्ध होगा। मेरा सुझाव है कि पहले हम और सब मूल अधिकार निपटा लें और इस क्लाज 2 पर सबसे आखिर में विचार करें। मैं देखना चाहता हूं कि आया मूल अधिकारों में की कोई व्यवस्था, किसी स्वराज्य-प्राप्त प्रांत या रियासत के अधिकारों का अतिक्रमण तो नहीं करती।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): मेरा रुख माननीय रेवरेंड निकोल्स राय के कथन के पक्ष में है और मैं श्री संतानम् का संशोधन स्वीकार नहीं कर सकता। वह अधिकार, हम यूनियन की व्यवस्थापक धारा सभा को अथवा प्रांतीय व्यवस्थापक धारा सभा को नहीं सौंप सकते। इसका अर्थ है कि श्री संतानम् के संशोधन से जिन मूल परिवर्तनों का तात्पर्य है, उन्हें करने का काम भावी विधान-परिषद् को सौंपा जाये। सभा से मेरा सुझाव है कि यह संशोधन स्वीकार करने से पहले, वह देख ले कि यह काम हम किसे सौंप रहे हैं और उसे प्रांतीय व्यवस्थापक सभा द्वारा स्वेच्छा से किये जाने के लिए छोड़ दे।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** प्रस्तावित संशोधन से सारे मूल अधिकार बाध्यतामूलक (आल्बिगेटरी) बन जायेंगे, क्योंकि यदि ये अधिकार कानूनी निर्णय के योग्य (न्याय-क्षम) व मूल समझे जाते हैं, तो इस क्लाज का पास किया जाना नितांत आवश्यक है। यदि ये कानूनी निर्णय के योग्य नहीं है तो वे बे-मेल हैं किन्तु यदि यह समझा जाता है कि वे क्लाज नागरिकों को ऐसे अधिकार प्रदान करते हैं। कानून द्वारा जिनका पालन कराया जा सकता है, तो यह आवश्यक है कि कोई भी कार्य, प्रथा, रेग्युलेशन या विज्ञप्ति जो इस अधिकार को छीनती या कम करती है अवश्य रद्द होनी चाहिये। ऐसा न होने से तो उसका कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। अतएव, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव के स्थगित किये जाने का विरोध करता हूं वे शब्द, मैंने श्री संतानम् का संशोधन स्वीकार कर लिया है।

***अध्यक्ष:** प्रस्तावक ने श्री संतानम् का संशोधन स्वीकार कर लिया है। अब प्रश्न है कि:

> ''क्लाज 2 में, और न यूनियन अथवा उसका कोई यूनिट ही ऐसा कोई कानून बनायेगा, जिससे ऐसा कोई अधिकार छिन जाये या कम हो जाये'' शब्दों की जगह निम्नलिखित शब्द रखे जायें:
>
> ''और बिना विधान में संशोधन किए ऐसा कोई अधिकार न तो छीना जायेगा और न कम किया जायेगा।''

प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न है कि (अब मैं संशोधित क्लाज पढ़ता हूं)—

> ''यूनियन के प्रदेशों में जारी सारे मौजूदा कानून, विज्ञप्तियों, रेग्युलेशन, प्रथाएँ अथवा चलन, जो विधान के इस अंश के आधीन आश्वासित अधिकारों के प्रतिकूल होंगे,

इस प्रतिकूलता की सीमा तक रद्द माने जायेंगे, और सिवाय विधान के संशोधन द्वारा ऐसा कोई अधिकार न तो छीना जायेगा और न कम किया जायेगा।''

विधान में स्वयं उसके संशोधन के लिए नियम दिये रहेंगे और विधान के अनुसार में इस प्रकार के नियमों की जो व्यवस्था रहेगी 'विधान' का संशोधन उसी के अनुसार होगा और आवश्यकता हो तो यह क्लाज भी 'विधान' के अन्य किसी क्लाज संशोधन किये जाने के तरीके से, संशोधित किया जा सकता है।

प्रस्ताव, सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

क्लाज 3

माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः अब मैं क्लाज 3 को लेता हूं।

''यूनियन में जन्मा अथवा यूनियन के कानूनों के अनुसार तथा उसके नागरिकता प्राप्त तत्सम्बन्धी अधिकार क्षेत्र के आधीन, प्रत्येक व्यक्ति, 'यूनियन' का नागरिक होगा।''

इसमें इतना और जोड़ दिया जाना चाहिये:

''यूनियन की नागरिकता से सम्बन्ध रखने वाली और व्यवस्था यूनियन के कानूनों द्वारा निर्मित की जा सकती है।''

कमेटी द्वारा पहले यह मूल रूप में पास किया जा चुका था, पर गलती से छपाई में यह निकल गया। श्री मुन्शी इसको पेश करेंगे।

***श्री के.एम. मुंशीः** सलाहकार कमेटी के सामने जो रिपोर्ट पेश की गई थी, ये शब्द असल में उसमें मौजूद थे, पर मालूम होता है कि भूल से वे अन्तिम रिपोर्ट में नहीं शामिल किये गये। विचार यह है कि 'यूनियन' को न केवल नागरिकता के अधिकारों की प्राप्ति के सम्बन्ध में कानून बनाने होंगे; बल्कि हो सकता है कि नागरिकता के सम्बन्ध में और भी व्यवस्था करनी पड़े। अतएव इस क्लाज में उन शब्दों का होना आवश्यक है, नहीं तो सारा विचार ही अपूर्ण रह जायेगा। इसलिए मैं प्रस्ताव करता हूं कि क्लाज के अंत में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

''यूनियन की नागरिकता से सम्बन्ध रखने वाली और व्यवस्था, यूनियन के कानूनों द्वारा निर्मित की जा सकती है।''

***श्री प्रमथ रंजन ठाकुरः** क्लाज जिस रूप में है, वह अस्पष्ट है। वह इस प्रकार है—

''यूनियन में जन्मा अथवा यूनियन के कानूनों के अनुसार नागरिकता के अधिकार प्राप्त.....''

मैं नहीं समझता कि कोई व्यक्ति कानून के अनुसार किस प्रकार जन्म सकता है। यूनियन के बाद अर्धविराम (अंग्रेजी वाक्य में) होना चाहिये; आपको इसे अस्पष्ट न रखना चाहिये।

***श्री बी. दास:** यह क्लाज ही केवल एक महत्त्वपूर्ण मूल अधिकार है। राजनीतिक जिसका कि दावा एक नागरिक कर सकें कि राजनीतिक समता का अधिकार यूनियन में जन्मे प्रत्येक व्यक्ति शब्दों के अन्तर्गत कोई भी अ-भारतीय, जर्मन अथवा जापानी, आ सकता है, जिसे 14वें से 21वें वर्ष तक भारतीय नागरिकता के अधिकार प्राप्त रहेंगे जब तक कि वह स्वयं घोषित नहीं करता कि वह भारतीय नहीं है। मैं चाहूंगा कि यह व्यवस्था भी रहनी चाहिये कि—

> ''यूनियन में जन्मा एक व्यक्ति उस राष्ट्रीयता की घोषणा कर सके जो वंश के कारण उसके लिए सुलभ हो।''

मालूम देता है कि मौलिक अधिकारों की कमेटी ने प्रश्न के इस पहलू पर विचार करने की परेशानी नही उठाई।

यूरोपियनों से उत्पन्न पुत्र तथा पुत्रियां राज्य की तथा निजी सर्विसों में काम तलाश करेंगी और बाद में वे विदेशी बन जा सकते हैं। लोरावर्टस् का जन्म भारत में हुआ था और फिर भी भारतीयों को दबाने के लिए वह एक बहुत कड़ा शासक सिद्ध हुआ। निस्संदेह, भारत में जन्मा एक ही ऐसा यूरोपियन पिमरे लाटी था, जो अन्त तक भारत का मित्र रहा। मैं अपने नेताओं से जहां तक कि वे उचित तरीके पर सोच रहे है सहमत हूं, अर्थात् मैं उनकी बात से सहमत हूं कि वे अधिकारों की व्याख्या के लिए कानून बना करके और भी व्यवस्था करेंगे। मुझे प्रतीत होता है कि नागरिकता का वर्तमान मस्विदा बहुत ही गलत है क्योंकि वह किसी बहाने से विदेशियों को आर्थिक शोषण का मौका देता है। जैसा कि श्री सिधवा ने सुझाया है आपने राष्ट्रीयता की परिभाषा कहीं भी नहीं की है। हम अवश्य समझते हैं कि मौलिक अधिकारों की कमेटी को अत्यधिक तेजी के साथ काम करना पड़ा है और कुछ बातों पर विचार करने के लिए उन्हें समय ही नहीं मिला है, जिससे इन बातों पर कमेटी का ध्यान अब तक नहीं जा सका। मुझे अवश्य आशा है कि यह सभा मामले के इस पहलू पर भी विचार करेगी और विदेशियों अथवा विदेशियों से जन्में लोगों द्वारा भारतीय नागरिकों के किसी भी प्रकार के शोषण के लिए न राजी होगी। यहां शोषण सम्बन्धी इस त्रुटि पर हमें खेद होता है।

***श्री के.एम. मुंशी:** श्रीमान्, व्यक्तिगत रूप से मुझे बताना है कि यह मैंने गलत कहा है कि यह क्लाज गलती से छूट गया था। मैंने कार्य विवरण रजिस्टर देखा तो मुझे मालूम हुआ कि सलाहकार कमेटी ने उसे छोड़ दिया था। मैं एक गलत धारणा में था।

***अध्यक्ष:** श्री दास ने जो प्रश्न उठया हे, वह विचारणीय है और मैं चाहता हूं कि प्रस्तावक महोदय उस पर विचार करें। क्लाज की शब्दावली जैसा कि वह इस समय है, इस प्रकार है—

> ''यूनियन में जन्मा प्रत्येक व्यक्ति यूनियन का नागरिक होगा।''

श्री दास का कहना है कि यह शब्दावली अत्यधिक व्यापक है और उसके अन्दर किसी भी विदेशी का बच्चा, जिसका जन्म इस देश में हुआ हो, आ सकता है, क्योंकि केवल अपने जन्म के कारण वह नागरिकता का अधिकार प्राप्त करेगा।

***श्री के.एम. मुंशी:** क्या मैं बता सकता हूं कि शब्दावली में, ''अधिकार-क्षेत्र के आधीन'' शब्द भी हैं। यह राजभक्ति का सिद्धांत है। परदेशियों, वाणिज्य-दूतों तथा राजदूतों से पैदा व्यक्ति शामिल न किये जायेंगे।

***अध्यक्ष:** ''अधिकार-क्षेत्र के आधीन'' में राजभक्ति शामिल न होगी। इस संबंध में मुझे पूरा निश्चय नहीं है, किन्तु इस सभा के वकीलों को इस विषय में हमारी सहायता करनी है।

***श्री के.एम. मुंशी:** ''अधिकार-क्षेत्र के आधीन'' की व्याख्या कई अधिकारियों ने की है; उसका अर्थ है वे व्यक्ति, जो उन व्यक्तियों से पैदा हुए हैं, जो 'यूनियन' के प्रति राजभक्ति रखते हैं। यदि आवश्यक हो, तो मैं यह प्रश्न उठाने वाले माननीय सदस्य को संतुष्ट कर सकता हूं। ''अधिकार-क्षेत्र के आधीन'' शब्दावली अमेरिकन विधान से ली गयी है और निश्चित रूप से यही अर्थ व्यक्त करने के लिए निर्मित हुई है।

***अध्यक्ष:** हमारे विधान को यथा सम्भव स्वत:पूर्ण होना चाहिये। हमें अन्य विधानों के क्लाजों की व्याख्या पर न अवलम्बित होना चाहिये, क्योंकि इससे काफी गड़बड़ पैदा हो सकती है।

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यह क्लाज अमेरिकन विधान से लिया गया है। नागरिकता के दो विचार हैं। यूरोपीय देशों में, नागरिकता जाति के आधार पर होती है; किसी निश्चित स्थान में किसी व्यक्ति के जन्म से उसका कोई संबंध नहीं है। आंग्ल-अमेरिकन प्रणाली में, एक व्यक्ति का जन्म किसी निश्चित स्थान में होने से उसे उसकी नागरिकता प्राप्त होती है। यदि आप कोई मित्र प्रणाली अपनाना चाहते हों, तो ऐसा कर सकते हैं। अमेरिकन प्रणाली के अनुसार, यदि एक हिन्दू आज भी अमेरिका जाता है, तो वह एक अमेरिकन नागरिक हो जाता है। यद्यपि प्रश्न देशीकरण (नेचुरलाइजेशन) का है, तो इस देशीकरण के रास्ते में कठिनाइयां अवश्य हैं अपने मित्र श्री मुंशी का सम्मान करते हुए मैं कहना चाहता हूं कि ''अधिकार-क्षेत्र के आधीन'' वाक्यांश उस अभिप्राय से नहीं जैसा कि मेरे मित्र ने बताया है, बल्कि भिन्न अभिप्राय से रखा गया है। फर्ज कीजिए कि इस देश में कोई वैदेशिक दूत (कॉंसल) है और उसके बच्चा पैदा होता है; तो बच्चे को इस देश की नागरिकता न प्राप्त होगी, कारण, उक्त दूत अथवा उसका बच्चा, यूनियन के अधिकार-क्षेत्र के आधीन न होगा। ''अधिकार-क्षेत्र के आधीन'' शब्दों के यहां प्रयोग करने का यही कारण है, क्योंकि यहां पर किसी भी वैदिशिक-दूत के पैदा होने वाला व्यक्ति, स्वयं अपने देश में पैदा हुआ माना जाता है। जहां तक किसी भी राज-दूत, वाणिज्य-दूत अथवा इसी प्रकार पदस्थ किसी अन्य व्यक्ति का संबंध है, बच्चे को नागरिकता न प्राप्त होगी।

[दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

यही कारण है कि क्लाज में ''अधिकार-क्षेत्र के आधीन'' शब्दों का प्रयोग किया गया है। अतएव, इस क्लाज का मुख्य आधारभूत सिद्धांत यह है कि यदि एक व्यक्ति यहां पैदा होता है, तो उसे नागरिकता अवश्य प्राप्त होनी चाहिये, चाहे वह परदेशी ही क्यों न हो। यही सिद्धांत इंग्लैंड में, अमेरिका में तथा आंग्ल-अमेरिकन न्याय-विज्ञान का अनुसरण करने वाले प्रत्येक देश में लागू है।

जहां तक यूरोपीय देशों का ताल्लुक है, वहां नागरिकता रक्त पर आश्रित है, जाति पर आश्रित है और इसलिए वह व्यक्ति चाहे जहां भी हो, यदि वह एक जाति के एक व्यक्ति का बेटा है, तो उसे नागरिकता जरूर प्राप्त होगी। यही सिद्धांत है। इसमें संदेह नहीं कि इस जन्म सम्बन्धी सिद्धांत के विषय में, उस अवस्था में कठिनाइयां पैदा होती है, जब लोग अपना देश छोड़ देते हैं और तब उनके बच्चे पैदा होते हैं। यही कारण है कि 'ब्रिटिश नैशनेलिटीज कानून' के अन्तर्गत, विदेश में ब्रिटिश नागरिकों के बच्चे पैदा होने के संबंध में भी व्यवस्था रखी गयी है और इस प्रकार के मामलों के लिए 'यूनियन' के कानूनों में भी समुचित व्यवस्था रखी जा सकती हैं क्लाज के पहले भाग से विधान, इस मूल सिद्धांत के पाबंद हो जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति जो इस 'यूनियन' में पैदा होता है, 'यूनियन' का नागरिक है। क्लाज का दूसरा भाग (नेचुरलाइजेशन) देशीकरण के सम्बन्ध में है और फिर दोनों ही भाग तत्संबंधी अधिकार-क्षेत्र के आधीन हैं। यूनियन के कानून द्वारा ऐसे मामलों के लिए भी व्यवस्था करनी होगी, जिसमें यहां के राष्ट्रजन देश से बाहर गये हों और उनके बच्चे पैदा हों। ठीक स्थिति यही है। यह आंग्ल-अमेरिकन कानून का एक सिद्धांत मात्र है कि यदि कोई व्यक्ति अधिकार-क्षेत्र के भीतर पैदा होता है, तो उसे नागरिकता अवश्य प्राप्त होगी। यदि आप इससे पृथक् होना चाहते हैं, तो ऐसा करने से आप कठिनाई में भी पड़ सकते हैं। आप (यूरोप की) प्रणाली को पूर्णतया अपना सकते हैं—जर्मन, फ्रेंच या इटालियन राष्ट्रीयता प्रणाली को अपना सकते हैं। किन्तु हमने सोचा था कि आंग्ल-अमेरिकन प्रणाली का अनुसरण करना, हमारे लिए अधिक अच्छा होगा, क्योंकि इस प्रणाली से हम अवगत हैं।

***अध्यक्षः** मैं एक प्रश्न करना चाहता हूं। फर्ज कीजिये कि एक व्यक्ति जो जन्म से जापानी है, इस देश से होकर यात्रा कर रहा है और यात्रा में ही उसके बच्चा पैदा हो जाता है। तब क्या होगा?

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** क्लाज की भाषा के बावजूद, 'अमेरिकन सुप्रीम कोर्ट' (सर्वोच्च न्यायालय) ने खुद इसी क्लाज के संबंध में निर्णय दिया है कि इस प्रकार का यात्री विधान की भाषा के अन्तर्गत न आयेगा।

***श्री अनंतशयनम् आयंगरः** क्यों नहीं?

दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः मेरा उत्तर यह है कि अमेरिका की 'सुप्रीम कोर्ट' ने इस क्लाज की व्याख्या करते हुए, यही निर्णय

दिया है। मैं समझता हूं यह एक उचित अपवाद है, जिसकी व्यवस्था की जा सकती है। कल मैंने इस प्रश्न पर विचार किया था यह समझते हुए कि यह बात जरूर उठेगी; क्योंकि रेलगाड़ी में एक महिला यात्री भी बच्चा जन्म सकती है। इस श्रेणी के व्यक्तियों के लिए, जो बच्चा पैदा होने के समय इस देश में केवल अल्पकाल के लिए उपस्थित हों, इस अपवाद की व्यवस्था करनी चाहिये कि ऐसे व्यक्ति को नागरिकता न प्राप्त होगी। पर तब 'अल्पकालीन उपस्थिति' का ठीक अर्थ क्या है? इसकी व्यवस्था करनी होगी और यह बहुत कठिन होगा। यह नियम मानकर कि नागरिकता का निश्चय जन्म से होगा, अमेरिका में, ऐसी परिस्थिति मे बहुत कठिनाई नहीं होती। यदि आप ऐसा नहीं चाहते, तो आपके लिए भी 'ब्रिटिश नैशनेलिटीज कानून' की ही तरह इस विषय में सविस्तार व्यवस्था रखना आवश्यक है; उक्त ब्रिटिश कानून में ऐसे मामलों पर लागू होने के लिए चार विशेष क्लाज रखे गये हैं। आप 'ब्रिटिश नैशनेलिटीज कानून' के सारे क्लाज ले सकते हैं, इस कानून में जो परिभाषा रखी है वह अधिक व्यापक है। किन्तु हमने सोचा था कि सारी बातों का ख्याल करते हुए अमेरिकन विधान की तरह सारी बातें थोड़े में रखना अधिक अच्छा होगा, और वे मूल-अधिकारों वाले अध्याय में ही शामिल की जा सकेंगी।

***अध्यक्ष:** यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न मालूम होता है और इसे हमें यथोचित रीति से निपटाना चाहिये। उस आदमी का क्या होगा, जो इस देश से होकर सिर्फ गुजर ही नहीं रहा है, बल्कि मान लीजिए इस देश में, व्यापार अथवा अन्य किसी कार्य के लिए, कुछ वर्षों के लिए रुक जाता है।

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर:** उसका बेटा एक नागरिक हो जायेगा, किन्तु राजनीतिक अधिकार नागरिक अधिकारों से भिन्न है। कानून का ऐसा कोई आम नियम नहीं है कि एक नागरिक राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने का अधिकारी है, क्योंकि हम इस बात से अनभिज्ञ हैं कि नागरिकता सम्बन्धी अमेरिकन कानून के अनुसार, नागरिक केवल नागरिक अधिकार प्राप्त करने का अधिकारी है। विधान को इस प्रकार निर्मित करने में कोई अड़चन नहीं है कि नागरिक को राजनीतिक तथा अन्य अधिकार न दिये जायें। नागरिकता में स्वत: ऐसी कोई चीज शामिल नहीं है, जिससे उसे कोई न्यूनतम अधिकार प्राप्त होते हों। खास-खास मामलों में नागरिकता, निश्चित अधिकार प्रदान कर सकती है। यदि आप सोचते हैं कि वे क्लाज सब नागरिकों पर लागू न किये जायें, तो इस प्रकार का भेद कायम करना आपका कार्य है। अमेरिकन कानून के अनुसार, जिससे कि यह लिया गया है, साधारणत: नागरिकता का अधिकार स्वत: न्यूनतम अधिकारों का अर्थ व्यक्त नहीं करता। यद्यपि 'अठारहवां संशोधन' संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रत्येक राज्य पर लागू है, किन्तु यूनियन के विभिन्न राज्यों में नागरिक को राजनीतिक तथा इसी प्रकार के अन्य अधिकार प्राप्त नहीं हैं। कुछ अधिकार हमने सब लोगों को दिये हैं। नागरिकों के मूल अधिकारों का क्षेत्र अब तक काफी संकीर्ण रखा गया है और धर्म, सम्पत्ति की रक्षा, व्यक्ति की सुरक्षा, संगठन की सुरक्षा

[दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

और सार्वजनिक व्यवस्था आदि के मामलों में नागरिकता के सम्बन्ध में सम्भवत: कोई बड़ी कठिनाई पैदा नहीं हो सकती। किन्तु नागरिकता में राजनीतिक अधिकारों का विचार लाने से, कठिनाई उत्पन्न होने की आशंका है। वर्ना, हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिये कि हमें यह सिद्धांत दूसरों से लेकर अपनाना है या उससे बिल्कुल पृथक् व्यवस्था रखनी है। खुद 'ब्रिटिश राष्ट्रीयता कानून' (ब्रिटिश नैशनेलिटी एक्ट) में ऐसी ही व्यवस्था मौजूद है। हमें यह भी सोचना है कि नागरिकता का विचार हमें 'ब्रिटिश नैशनेलिटी कानून' से अथवा अमेरिकन कानून से भिन्न रखना है अथवा जर्मन या इटालियन विचार के आधार पर उसे अपनाना है अथवा हमें नागरिकता का विचार स्वयं निश्चित करना है। यही वस्तु-स्थिति है।

***अध्यक्ष:** व्यक्तिगत रूप से मैं नहीं चाहता कि हम किसी अन्य देश के उदाहरण का अनुसरण करें। हमें खुद अपनी नागरिकता निश्चित करनी चाहिये और सूत्र बना देना चाहिये कि इस नागरिकता का अर्थ क्या है?

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर:** यद्यपि मैं इसका बहुत समादर करता हूं, किन्तु मैं इस बात को एकदम नहीं भुला सकता कि नागरिकता के साथ अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सुरक्षा भी शामिल रहेगी। नागरिकता का प्रश्न निपटाते समय हमें स्मरण रखना है कि हम भेदभाव के विरुद्ध लड़ रहे हैं और यह लड़ाई दक्षिण अफ्रीका तथा अन्य राज्यों के खिलाफ है। यह आपके विचार करने की बात है कि नागरिकता का हमारा विचार सार्वभौमिक अथवा जातिगत या वर्गगत होना चाहिये। यह एक राजनीतिक प्रश्न है, जिसके लिए मैं इतना योग्य नहीं हूं, जितने कि यहां के कुछ अन्य लोग, किन्तु जहां तक भी इसका सम्बन्ध है, मैं केवल इतना ही बता रहा हूं कि इस विषय का कानून क्या है और 'मौलिक अधिकारों की कमेटी' ने किन सिद्धांतों के आधार पर इस विषय में विचार किया है।

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर:** एक ऐसे जापानी का उदाहरण लीजिये, जो इस देश में आकर कुछ समय तक यहां ठहरता है और उसके एक बेटा पैदा होता है। क्या उसकी वह नागरिकता जाती रहेगी, जो उसने जापान की अपनी मां से प्राप्त की है अथवा वह नागरिकता बनी रहेगी और वह दोनों ही देशों का नागरिक बना रहेगा?

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर:** द्विराष्ट्रीयता की समस्या, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायवेत्ताओं के लिए एक अत्यधिक कठिन प्रश्न है। हम एक प्रकार की नागरिकता की ही व्यवस्था कर सकते हैं। राज्य-विहीनता या द्विराष्ट्रीयता की समस्या से उत्पन्न होने वाली सारी जटिलताओं को हटाने की कोशिश हम नहीं कर सकते। यूरोपियन तथा आंग्ल-सैक्सन प्रणालियों के परस्पर विरोधी होने के कारण अनेक अन्तर पड़ सकते हैं। व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में जो इन प्रणालियों के

विरोध की स्थिति में अपनी नागरिकता स्थिर करना चाहता हो, आप भले ही कुछ व्यवस्था कर सकें, किन्तु मौलिक अधिकार सम्बन्धी एक अध्याय में सम्भवतः आप उन सारी जटिलताओं के लिए समुचित व्यवस्था नहीं कर सकते, जो द्विराष्ट्रीयता राज्य-विहीनता तथा अन्य ऐसी ही बातों की समस्या से उत्पन्न हों।

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगरः** क्लाज 4 में कहा गया है:

''राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, जाति, वर्ण अथवा स्त्री-पुरुष होने के कारण कोई भेदभाव न रखेगा।''

इसलिए वह पूर्ण नागरिकता है और यह एक मूल अधिकार है। यह केवल विधान के संशोधन द्वारा ही बदला जा सकता है और किसी यूनिट अथवा यूनियन की व्यवस्थापक सभा का भी कोई कानून उसे नहीं बदल सकता। इसलिए आप राजनीतिक अधिकारों तथा नागरिकता के अधिकारों के बीच कोई भेद नहीं रख रहे हैं। क्या यह वांछनीय नहीं है कि हम इस परिभाषा को उसके वर्तमान रूप में अस्पष्ट ही न छोड़ दें।

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यरः** भेदभाव विषयक क्लाज का सम्बन्ध नागरिक अधिकार से ही हो सकता है। यह प्रांतीय तथा यूनियन के विधानों का काम होगा कि वे किसी भी रूप में मताधिकार प्रदान करें। यदि आवश्यक हो, तो आप प्रांतीय और यूनियन के दोनों ही विधानों में इस पर मताधिकार सम्बन्धी शर्तें लगा सकते हैं। मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि वास्तव में कमेटी के कुछ सदस्य यह कहने के लिए उत्सुक थे कि प्रत्येक अधिकार का मानवीय अधिकार होना जरूरी है? मुझे आशा है कि यह बता कर मैं कोई गुप्त बात नहीं प्रकट कर रहा हूं कि श्री मसानी ने यहां तक कह डाला था कि अधिकांश अधिकारों को इस देश के (समस्त) मानव प्राणियों पर लागू किया जाना चाहिए; वे ऐसी ही व्यवस्था के पक्ष में थे। वास्तव में इसमें कोई नयी बात नहीं है। अमेरिकन विधान के पहले दस संशोधन केवल नागरिकों तक ही सीमित नहीं हैं। सुप्रीम कोर्ट भले ही उनका चाहे जो अर्थ लगाये, किन्तु अमेरिकन विधान के प्रथम दस संशोधन नागरिकों तक ही सीमित नहीं हैं। वे प्रत्येक मानव प्राणी के लिए आमतौर से लागू हैं। इसमें शक नहीं कि ''भेदभाव (डिस्क्रिमिनेशन)'' के शब्द से समझा गया है कि वह राजनीतिक अधिकार के लिए लागू नहीं है, बल्कि नागरिकों द्वारा साधारणतः व्यवहृत नागरिक (सिविल) अधिकार तक ही सीमित है। हम लोग कोई नयी बात नहीं करने जा रहे हैं।

***श्री आर.वी. धुलेकर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): मेरी अर्ज है कि ऐसे बच्चे के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं रखी गयी है, जो यूनियन के बाहर किन्तु यूनियन के नागरिकों से पैदा हुआ हो। मैं जानना चाहूंगा कि आया ऐसे बच्चे को भी नागरिकता का अधिकार प्राप्त होगा या नहीं?

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यरः** इसीलिए यह नियम रखा गया है कि यूनियन के कानून द्वारा इसकी व्यवस्था की जा सकती है।

[दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

मैं एक और सुझाव भी देना चाहूंगा। यूनियन के विधान का मसविदा तैयार होने पर आप इस पर विचार कर सकते हैं। यदि आप यह विचार स्वीकार करते हैं कि सामान्यतः हमें आंग्ल-सक्सन अथवा अमेरिकन न्याय-विज्ञान का साधारण सिद्धांत, कुछ आवश्यक संशोधनों के साथ अपना लेना है, तो फिलहाल वह विधान के कानून द्वारा जारी किया जा सकता है। आप लोगों के जो विचार प्रकट हुए हैं, विशेषकर उनके ख्याल से, हम सारी बात पर विधान की अन्य व्यवस्थाओं के साथ तुलनात्मक दृष्टि से विचार करेंगे और यदि उसका इन व्यवस्थाओं से विरोध होगा, तो उस पर भी विचार किया जा सकता है। पर एक बात है; क्या हम वंश-सिद्धांत का विचार अपनाने जा रहे हैं। अर्थात् क्या हम यह सिद्धांत स्वीकार करने जा रहे हैं कि केवल वे ही लोग जो (नागरिक) माता-पिता से पैदा हैं—चाहे आप उन्हें भारतीय कहें या अन्य लोग—नागरिकता के अधिकारी हैं अथवा हम इस सिद्धांत को स्वीकार करने जा रहे हैं कि नागरिकता का निपटारा जन्म (जन्म भूमि) से ही होता है, यद्यपि ऐसी दशा में भारतीयजनों के विदेश में पैदा होने वाले बच्चों के लिए हमें आवश्यक अपवाद-व्यवस्था भी शामिल करनी होगी। मैं यह कदापि नहीं सुझा रहा हूं कि आपको कड़ाई के साथ 'लेक्स सोली' के अर्थात् जन्म-भूमि के सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिए। इस विषय में दो सिद्धांत हैं—'लेक्स सोली' और 'लेक्स सेंजुइनिस।' 'लेक्स सोली' का अर्थ है, जन्म-भूमि का कानून और 'लेक्स सेंजुइनिस' का अर्थ है, रक्त-संबंध के अनुसार। अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्षेत्र में, ये दो विभिन्न सिद्धांत हैं।

***श्री आर.के. सिधवाः** जब मुख्य एडवाइजरी कमेटी में इस प्रश्न पर विचार किया गया था, तो यह क्लाज इस रूप में था।

> ''यूनियन में पैदा अथवा यूनियन में देशीयकृत (नेचुरलाइज्ड), प्रत्येक व्यक्ति, यूनियन का एक नागरिक होगा।''

इस पर मैंने वहां संशोधन का प्रस्ताव किया और कहा कि नागरिकता का क्लाज बहुत ही अस्पष्ट है तथा उसे और साफ किया जाना चाहिए, जैसा कि आपने भी ठीक ही बताया है। मैंने एक निश्चित अवधि की व्यवस्था रखी है। मैंने कहा कि जिस व्यक्ति का भी इस देश में कम से कम 10 वर्ष तक देशीयकरण न हो जायेगा वह नागरिक न समझा जायेगा।

इस पर निम्नलिखित शब्द जोड़े गये—

> ''कानूनों के अनुसार और वहां के अधिकार-क्षेत्र के आधीन''

मुझे बताया गया कि इस रूप में मेरी बात आ जाती है, यद्यपि मैं संतुष्ट नहीं था। साधारण बुद्धि वाले मनुष्य की हैसियत से मैंने महसूस किया कि जो दृष्टि-बिन्दु मैंने रखा है, वह इस रूप में भी नहीं आ पाया। किन्तु तो भी कानूनी पंडितों की राय के आगे मैं लाचार था। इसलिए यह बहुत ही जरूरी है कि नागरिक शब्द की परिभाषा स्पष्ट होनी चाहिए और वह विधान में ही शामिल की जानी

चाहिए, न कि बाद में कानून बनाये जाने के समय के लिए छोड़ दी जानी चाहिये। मेरा सुझाव है कि उसकी स्पष्ट परिभाषा यहीं दी जाये और यह क्लाज स्थगित रखा जाये और इस पर कल विचार हो।

***श्री जगतनारायण लाल** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मेरा विश्वास है कि 'आयरिश फ्री स्टेट' के विधान में दी गयी नागरिकता की परिभाषा, इस संबंध में उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उक्त विधान में यह परिभाषा इस प्रकार दी गयी है:

> ''इस विधान के चालू होने के समय आयरिश फ्री स्टेट के अधिकार के इलाके में निवास ग्रहण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री-पुरुष के भेद बिना, जो आयरलैंड में जन्मा था या जिसके माता-पिता में से कोई भी आयरलैंड में जन्मा था या जो कम से कम 7 वर्ष तक आयरिश फ्री स्टेट के इलाके में साधारणत: निवासी रहा है, 'आयरिश फ्री स्टेट' का नागरिक है।''

मेरा ख्याल है कि यदि निवास के संबंध में ऐसी 7 वर्ष की अवधि निश्चित कर दी जाये, तो उससे हमारी कठिनाई हल हो जायेगी।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान् मुझे मालूम होता है कि इस परिभाषा के शब्द, प्राय: शब्दश: अमेरिकन विधान से लिये गए हैं। अमेरिकन विधान में वह इस प्रकार है—

> 'संयुक्त-राज्य अमेरिका में जन्मे या देशीयकृत और वहां के अधिकार-क्षेत्र के अधीन सब व्यक्ति, संयुक्त-राज्य के तथा उस राज्य स्टेट के जिसमें वे रहते हैं, नागरिक हैं।'

किन्तु हमें बताया गया है कि 1868 वाली इस परिभाषा के अर्थ बाद के वर्षों में भिन्न-भिन्न लगाये गए हैं। अतएव, मेरा अनुरोध है कि यह विषय पुनर्विचार के लिए कल पर छोड़ दिया जाये। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण क्लाजों में से एक है। नागरिकता के प्रश्न पर सारे संसार में, उदाहरण के लिए येरूशलम में काफी झगड़े हुए हैं। यह एक ऐसा विषय है, जिस पर मतभेद की काफी गुंजाइश है। उदाहरणार्थ यदि एक जापानी बच्चा इस देश में पैदा होता है, तो क्या उसे इस देश का नागरिक या राष्ट्रजन सिर्फ इसलिए हो जाने देना चाहिए क्योंकि वह यहां जन्मा है? अथवा हम यह व्यवस्था करें कि यदि कोई आदमी इस देश में 10 या 15 साल रहता है, तो उसे इस देश का नागरिक होने का अधिकार मिलना चाहिये? मैं नहीं समझता कि इस देश की नागरिकता के मामले में हमें विदेशियों के बीच कोई भेद रखना चाहिए। मेरे विचार से मौलिक अधिकारों में ऐसा नहीं सोचा गया है, यह एक नई खोज है। यह ऐसे मामले हैं, जिन पर गहराई से विचार करने की जरूरत हैं अतएव मेरी तजवीज है। यह ऐसे मामले हैं, जिन पर गहराई से विचार करने की जरूरत है। अतएव मेरी तजवीज है कि यह प्रश्न कल तक के लिए छोड़ दिया जाये। कल जब हम लोग साथ बैठेंगे, तो विचार कर लेंगे कि मौजूदा परिभाषा को किस रूप में संशोधित किया जाये।

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यरः** श्रीमान्, मैं इस सभा का ध्यान केवल ब्रिटिश नागरिक की परिभाषा की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। इस परिभाषा से भी कठिनाइयां पैदा हुई हैं और विवाहित स्त्रियों के लिए उन लोगों को पृथक् व्यवस्था रखनी पड़ी है। यह कोई इतना सरल कार्य नहीं है कि एक ही रात में या यों कहिये कि कल सेवेरे तक, आप एक राष्ट्रीयता कानून (नैशनेलिटी एक्ट) गढ़ कर तैयार कर लें। ब्रिटिश परिभाषा, जिसका मैंने जिक्र किया है, इस प्रकार है—

(1) निम्नलिखित व्यक्ति, प्रकृतजात ब्रिटिश-प्रजा-जन समझे जायेंगे—

(क) कोई भी व्यक्ति, जो सम्राट के राज्य (डोमिनियन) तथा भीतर जन्मा है और राज्य निष्ठा रखता है।

(ख) कोई भी व्यक्ति जो सम्राट के राज्य (डोमिनियन) से बाहर जन्मा है, जिसके जन्म के समय उसका पिता एक ब्रिटिश प्रजा-जन था और जो नीचे लिखी कोई भी शर्त पूरी करता है, अर्थात् यदि,

(1) उसका पिता सम्राट की राज-भक्ति में पैदा हुआ था, या

(2) उसका पिता ऐसा व्यक्ति था, जिसे देशीयकरण का प्रमाण-पत्र प्राप्त हो चुका था, या

(3) उसका पिता किसी इलाके के (राज्य) में मिलाने के कारण, एक ब्रिटिश प्रजा-जन हो चुका है।

(4) उसका पिता, उस व्यक्ति के जन्म के समय, ताज (क्राउन) की नौकरी में था, या

(5) उसके जन्म की रजिस्ट्री एक साल के भीतर या विशेष परिस्थितियों में आदि-आदि किसी ब्रिटिश वाणिज्य-दूतावास (कंस्युलेट) में हो चुकी थी,

(ग) कोई भी व्यक्ति जो एक ब्रिटिश जहाज पर पैदा हुआ है, चाहे वह जहाज विदेशी समुद्र सीमा में रहा हो अथवा नहीं।

इस कानून से भी विवाहित स्त्रियों के मामले में कठिनाई पड़ी है इसलिए, यदि कम से कम एक बात का निर्णय कर लिया जाये और यदि हम आम तौर पर सिद्धांत स्वीकार कर लें, तो अधिक अच्छा होगा। मेरे मित्र श्री अनंतशयनम् आयंगर मुझसे अधिक आशावान् हैं। मैं नहीं समझता था कि कल सवेरे तक इस कठिनाई का हल ढूंढ निकालना, हमारे लिए सम्भव होगा। फिलहाल हमें साधारण सिद्धांत स्वीकार कर लेना चाहिए इस पर बाद में विचार कर लिया जायेगा कि उसके साथ कौन सी शर्तें शामिल रहनी चाहिएं और उसमें किस संशोधन की आवश्यकता है। एक रात के भीतर कल दिन के 11 बजे से पहले हमें राष्ट्रीयता कानून गढ़ने की जरूरत नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रस्तावक के विचारार्थ क्या मैं एक बात सुझा सकता हूं। चूंकि यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है—और ऐसा विषय है जिसे मैं स्वयं बड़े महत्त्व

का समझता हूं—इसलिए, यदि इस प्रकार का एक संशोधन स्वीकार कर लिया जाये, तो उससे हमारी बहुतेरी कठिनाइयां दूर हो सकती हैं। आप वाक्य को इस प्रकार शुरू करें:

> ''सिवा उन स्थितियों के जिनके विरुद्ध यूनियन के कानून में कोई व्यवस्था रखी गयी है, यूनियन में जन्मा या यूनियन के कानूनों के अनुसार उसकी अधिकार सीमा के अन्दर देशीकृत प्रत्येक व्यक्ति यूनियन का नागरिक समझा जायेगा।''

अमेरिकन विधान में क्या व्यवस्था है यह तो मैं नहीं जानता, किन्तु मैं समझता हूं कि क्लाज का यह रूप इतना व्यापक है कि इस यूनियन में जन्मा हर व्यक्ति यूनियन का नागरिक हो सकेगा और एक नागरिक के अधिकार, क्लाज 9 में नियत ही कर दिये गए हैं।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** आधुनिक संसार में राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में दो प्रकार के विचार हैं। एक है व्यापक राष्ट्रीयता का और दूसरा संकुचित राष्ट्रीयता का। दक्षिण अफ्रीका में हम वहां के जन्मे भारतीयों के लिए दक्षिण अफ्रीकी राष्ट्रीयता का दावा करते हैं इसलिए इस सम्बन्ध में संकुचित दृष्टिकोण रखना उचित नहीं है।

***अध्यक्ष:** दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के लिए वहां की राष्ट्रीयता का दावा हम केवल उनके वहां जन्मने के कारण नहीं बल्कि वहां बस जाने के कारण करते थे।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** जी, हां। यह विधान दस वर्ष के लिए है, जिसके बाद उसमें संशोधन किया जा सकेगा। हमने एक शर्त जोड़ दी है, जिससे हमारी सारी कठिनाई हल हो जाती है। मैं आपसे विचार करने को कहता हूं कि आखिर कितने विदेशी पुरुष तथा स्त्री भारतीय राष्ट्रीयता प्राप्त करने के लिए भारत में बच्चे पैदा करने आते हैं। यह अजीब ख्याल है कि इस अभिप्राय से आप हमारे विधान में जातीय (racial) मूलक शब्दावली रखने जा रहे हैं हमें यह स्मरण रखना आवश्यक है कि नागरिकता के विषय में हम जो व्यवस्था रखेंगे, उसे सारी दुनिया जांचेगी। जो कुछ हम यहां कर रहे हैं, उस पर सारे संसार की दृष्टि है। यदि आप इस मामले को स्थगित करते और कानूनी विवाद पैदा करते हैं, तो ऐसा करने में हमें भारी खतरा उठाना होगा। इसके नियम प्रत्येक शब्द की टीका-टिप्पणी करके आप यह मामला कभी समाप्त न कर पायेंगे। यह एक सीधी-सादी समस्या है। कुछ विदेशी तो यहां सदा आते रहेंगे। यह आकस्मिक राष्ट्रीयता होगी। यदि जन्म के संयोग से कोई व्यक्ति यहां आ जाता और रुकता है, तो उस शर्त के आधीन जो हमने रखी है, द्विराष्ट्रीयता पर हम कानून-निर्माण द्वारा नियंत्रण रख सकते हैं। हमेशा हम उस पर नियंत्रण रख सकते हैं।

***माननीय श्री सी. राजगोपालाचार्य** (मद्रास : जनरल): हमें स्मरण रखना चाहिए कि इस क्लाज का ठोस उद्देश्य भारत की एक संयुक्त-नागरिकता को जन्म देना है। संयोगवशात आए हुए विदेशियों की नागरिकता सम्बन्धी सम्भावनाओं से हमें शंकित न होना चाहिये।

***माननीय डॉ. कैलाशनाथ काटजू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इस विषय की जो विद्वत्तापूर्ण व्याख्या की है, उससे अधिक कुछ कहना मेरे लिए आवश्यक नहीं है। मेरा सुझाव है कि परिभाषा के वर्तमान स्वरूप में हम इस प्रकार की कोई चीज और जोड़ दें। वर्तमान कानून के अनुसार, आज ब्रिटिश भारत में पैदा होने वाला प्रत्येक व्यक्ति भारतीय नागरिकता प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति भारत से बाहर कहीं पैदा होता है, तो वह भारतीय प्रजा-जन हो जाता है, क्योंकि वह एक भारतीय प्रजा-जन का बेटा है। यह इस रूप में रखा जाना चाहिये कि इस सम्बन्ध में कोई विवाद ही न पैदा हो। इसे, साथ की शर्त पर न छोड़ दिया जाना चाहिये। भारतीय यूनियन का प्रजा-जन जब कभी संसार के किसी भी भाग में जाता है, और यदि वहां उसके बच्चा पैदा होता है तो वह बच्चा भारतीय यूनियन का प्रजा-जन हो जाता है। मैं इसी को कानून समझता हूं। यदि कानून ऐसा नहीं है, तो यूनियन का कानून ऐसा होना अत्यावश्यक है। विदेशों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए अब हम अपने अनेक राजदूतों को बाहर भेज रहे हैं। यह बड़े शोक की बात होगी, यदि बाहर जाने वाले इन लोगों के वहां बच्चे पैदा होने पर हम इन बच्चों को भारतीय प्रजा-जन न मान सकें। परिभाषा में इसका जोड़ा जाना जरूरी है। द्विराष्ट्रीयता के संबंध में मैं कुछ कहना नहीं चाहता। इसका कानून एकदम साफ है। 'आजाद हिन्द फौज' के कर्मचारियों के मुकदमों की सुनवाई के समय इस पर बहुत जोर दिया गया था। उस समय मालूम हुआ कि कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि यदि एक गैर-ब्रिटिश प्रजा-जन के भारत में बच्चा पैदा होता है, तो उस बच्चे को द्विराष्ट्रीयता प्राप्त हो सकती है—एक उस देश की जहां वह जन्मा है और दूसरी उस देश की जहां के कि उसके माता-पिता हैं। वयस्क (बालिग) हो जाने पर उसे अधि कार होता है कि वह एक राष्ट्रीयता को स्वीकार कर ले और दूसरी को त्याग दे। अपनी तरफ से तो मेरा कहना है कि भारत की भूमि पर जो भी पैदा हो, उसका भारतीय यूनियन के प्रजा-जन के तौर पर स्वागत होना चाहिये। यह एक स्पष्ट और समझ में आने वाली बात है। मेरा विचार है कि हमें इसे मान लेना चाहिये।

***श्री के.एम. मुंशी:** जैसा कि डॉक्टर काटजू ने सुझाया है, भारतीय माता-पिता से उत्पन्न प्रत्येक बच्चे को यूनियन की नागरिकता प्राप्त होनी चाहिये। असल में यह क्लाज पहले जिस रूप में रखा जा रहा था, उसमें यह व्यवस्था थी कि बच्चों को नागरिकता प्राप्त होगी, यदि उनकी पैदायश के समय उनके माता-पिता भारतीय नागरिक हों। किन्तु ऐसा ख्याल किया गया कि यदि आप इस

क्लाज में विभिन्न बातें, शर्तें आदि रखना एक बार शुरू करते हैं, तो हमें यहीं और इसी समय राष्ट्रीयता का एक कानून तैयार करने में व्यस्त हो जाना पड़ेगा। इसीलिए, जिस संशोधन का प्रस्ताव मैंने किया था, वह शामिल कर लिया गया। वह संशोधन यही था कि इन विभिन्न प्रकार के मामलों के लिए आवश्यक व्यवस्था यूनियन के कानून द्वारा कर ली जायेगी। आखिर हम लोग कोई राष्ट्रीयता सम्बन्धी कानून नहीं बना रहे हैं। हम केवल दो अनिवार्य शर्तें रख रहे हैं, जो यह है कि भारत में पैदा तथा यूनियन के कानून के अनुसार देशीयकृत व्यक्ति नागरिक होंगे। यह संसार जातिय नागरिकता और लोकतंत्रात्मक नागरिकता के विचारों के बीच बंटा हुआ है; इसलिए यह जताने के लिए कि हम लोकतंत्रात्मक सिद्धांत के पक्ष में हैं, 'भारत में पैदा' शब्द आवश्यक हो जाते हैं।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** जैसा कि मैं पहले ही स्पष्ट कर चुका हूं, इन सारे ही विचार-बिन्दुओं की व्यवस्था इस क्लाज के अन्तर्गत आसानी से की जा सकती है—

> ''यूनियन की नागरिकता के सम्बन्ध में और व्यवस्था, यूनियन के कानून द्वारा की जा सकती है।''

विभिन्न दृष्टि-बिन्दुओं से सुझायी गयी सारी कठिनाइयां इसके द्वारा हल हो जाती है। यदि ऐसा आवश्यक हो, तो नागरिकता के सम्बन्ध में यूनियन कोई भी कानून बना सकती है। आखिर कितने लोग बाहर जा रहे हैं? केवल कुछ लोग। फर्ज कीजिये कि कुछ बच्चे (देश से) बाहर पैदा होते हैं, और यदि कोई आवश्यकता पड़ी तो, इस शर्त से ऐसी कठिनाइयों की पर्याप्त व्यवस्था हो जाती है। विरोधी पक्ष की कठिनाइयों की भी व्यवस्था हो जाती है; अतएव हमारी साधारण प्रस्तावना अथवा इन मूल अधिकारों के अन्तर्गत नागरिकता का साधारण अधिकार ऐसे विस्तीर्ण आधार पर निश्चित होना चाहिये, कि जो भी कोई हमारे कानून पढ़े, वह केवल यही ख्याल कर सके कि हमने उसे निर्मित करने में व्युत्पन्न, आधुनिक, सु-संस्कृत मति से काम लिया है। नागरिकता संबंधी खोज अमेरिकन विधान के नमूने पर लिया गया है, जो न्यूनाधिक रूप में ब्रिटिश से मिलता-जुलता है। इसलिए हमें इसमें हस्तक्षेप न करना चाहिये। और हमें इससे डरने की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि 10 वर्ष के मध्यवर्तीकाल में इससे कोई भी कठिनाइयां नहीं उत्पन्न होने को हैं यदि 10 वर्ष तक विधान बरतने के अनुभव के बाद, हमें कोई कठिनाइयां मालूम पड़ें तो हम उसे आसानी से बदल सकते हैं। किन्तु मुझे कोई संदेह नहीं है कि इससे कोई जटिलता या कठिनाई नहीं उठने को है। यह एक सीधा-सा खण्ड है, जो स्वतंत्र भारत के प्रथम विधान के लिए सर्वथा योग्य होगा और हमें कोई संदेह करने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय श्री सी. राजगोपालाचार्य:** श्रीमान्, मैं समझता हूं कि शब्द ''अधिक व्यवस्थाएं'' होना चाहिये अर्थात् 'व्यवस्था' शब्द बहुवचन में होना चाहिये।

***अध्यक्षः** सुविख्यात कानूनी पंडितों (वकीलों) की विद्वत्तापूर्ण वक्तृताएं सुनने के बाद भी मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे अभी विश्वास नहीं है कि यह क्लाज जिस रूप में इस समय है, वह ठीक रखा गया है। किन्तु तो भी सभा उसे मौजूदा रूप में ही स्वीकार करने को स्वतंत्र है।

***श्रीयुत रोहिणी कुमार चौधरीः** श्रीमान्, मेरा सुझाव है कि इस क्लाज का विचार और स्थगित रखा जाये।

***अध्यक्षः** मुझे भय है कि ऐसा सम्भव नहीं है।

इन शब्दों से—

> ''यूनियन की नागरिकता के सम्बन्ध में अधिक व्यवस्थाएं, यूनियन के कानून द्वारा की जा सकती हैं।''

स्थिति न सुधरेगी, क्योंकि 'अधिक' का अर्थ है अतिरिक्त तथा संशोधन के जरिये अतएव क्लाज के प्रथम भाग में जो व्यवस्थाधिक्य है, वह इसके द्वारा किसी रूप में कम न होगा। किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं अपना विचार प्रकट करने के सिवा इस सभा को प्रभावित करना नहीं चाहता और मैं इसे आपके मत पर छोड़ता हूं।

***कई माननीय सदस्यः** क्लाज अभी रोका रखा जाये।

***माननीय श्री सी. राजगोपालाचार्यः** श्रीमान्, क्या आप मुझे एक शब्द कहने की अनुमति देंगे? यहां कुछ गलतफहमी पैदा हो गयी है।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि इस अवस्था में किसी सदस्य को इस क्लाज पर बोलने की अनुमति देना ठीक होगा। यह सुझाव आया कि इस क्लाज का विचार स्थगित कर दिया जाये और मालूम होता है कि यह सुझाव बहुत से सदस्यों ने दिया है।

प्रश्न है कि—

इस क्लाज का विचार स्थगित कर दिया जाये।

(सदस्यों से हाथ उठवाकर, उनके मत लिये गये)

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** इस सभा के उन सदस्यों से जो न्यायवेत्ता तथा कानून के पंडित हैं, विशेषकर प्रार्थना करूंगा कि वे इस क्लाज पर ध्यानपूर्वक विचार करें और हमारे सामने कोई ऐसी चीज रखें जो सबको स्वीकार्य हो। यदि इन लोगों का भी यही विश्वास है कि यह क्लाज अपने वर्तमान स्वरूप में ही स्वीकार कर लिया जाना चाहिये, तो मुझे सन्देह नहीं है कि सभा उनका यह मत, उसी सम्मान के साथ स्वीकार करेगी। जिसके कि वे अधिकारी हैं।

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यरः** श्रीमान्, हमारी कमेटी बड़ी है और नागरिकता के प्रश्न पर विचार-परामर्श करने के लिए बीस आदमियों

की संख्या की संख्या अव्यावहारिक है। साथ ही पूरे प्रश्न पर सोच-विचार हो भी चुका है, अतएव मेरा सुझाव है कि इस क्लाज पर विचार करने के लिए एक छोटी-सी कमेटी नियुक्त कर दी जाये।

***श्री के.एम. मुंशी:** यह अधिक अच्छा होगा। ये लोग एक साथ बैठकर सोच-विचार कर सकते हैं, क्योंकि यह विशुद्ध टेक्निकल विषय का सोच-विचार है।

***अध्यक्ष:** यह विशुद्ध कानूनी विषय है और इसलिए इसका मस्विदा तैयार करने का काम मैं कानून के जानकार सदस्यों (वकीलों) पर छोड़ना चाहता हूं।

***श्री के.एम. मुंशी:** तीन कमेटियां इस प्रश्न के हर पहलू पर बड़ी बारीकी से विचार कर चुकी हैं। अब आप ही व्यक्तियों को नामजद कर सकते हैं, जो इस प्रश्न पर आपके साथ विचार-परामर्श करेंगे।

***अध्यक्ष:** बात यह नहीं है कि केवल मैं ही इसके सम्बन्ध में संतुष्ट नहीं हूं, बल्कि इस सभा के अधिकांश सदस्य इसके प्रति सन्देहशील है। इसलिए केवल मेरे साथ विचार-परामर्श करने से कोई लाभ नहीं है। यदि मैं सन्तुष्ट भी होऊं, पर सभा सन्तुष्ट न हो, तो इससे मामला तय नहीं हो सकता।

***श्री आर.वी. धुलेकर:** श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि सर बी.एल. मित्तर, डॉ. काटजू और श्री के.एम. मुंशी की एक छोटी-सी कमेटी, इस मामले पर विचार करने के लिए नियुक्त कर दी जाये।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू:** मेरा ख्याल है कि मामला, अध्यक्ष महोदय और कमेटी के सभापति पर छोड़ दिया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** यदि यह मुझ पर छोड़ा जाता है, तो मैं वकीलों से इस प्रश्न पर विचार करने को कहूंगा।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया:** मेरा सुझाव है कि तीन वकीलों के अतिरिक्त एक सहज बुद्धि का व्यक्ति भी शामिल कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** वकीलों को, मैं सहज बुद्धि के लोगों की श्रेणी से बाहर नहीं गिनता।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** श्रीमान्, मैं क्लाज 4 के विचार का प्रस्ताव करता हूं, जो नीचे लिखे अनुसार है:

> ''4 (1) धर्म, नस्ल, जाति या स्त्री-पुरुष विभेद के आधार पर राज्य किसी भी नागरिक के विरुद्ध किसी प्रकार का भेद-भाव न बरतेगा।
>
> (2) धर्म, नस्ल, जाति या स्त्री-पुरुष विभेद आदि किसी भी कारण से इन बातों के सम्बन्ध में किसी नागरिक के विरुद्ध कोई भेदभाव न बरता जायेगा।

[माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल]

(क) व्यापारिक प्रतिष्ठानों में, जिनमें सार्वजनिक रेस्तरां तथा होटल भी शामिल हैं, प्रवेश।

(ख) सार्वजनिक धन से पूर्णतः अथवा अंशतः चलाये जाने वाले या साधारण जनता के व्यवहार के लिए प्रदत्त कुओं, तालाबों, सड़कों, तथा सार्वजनिक स्थानों का उपयोग।

किन्तु शर्त यह है कि इस क्लाज की किसी भी बात से स्त्रियों और बच्चों के लिए पृथक् व्यवस्था कर सकने में कोई बाधा न पड़ेगी।

यह एक ऐसा क्लाज है जिसमें भेदभाव की व्यवस्था नहीं है और ऐसा खण्ड प्रायः हर विधान में मौजूद है और हमारे देश की विशेष स्थितियों के उपयुक्त बनाने के लिए उसमें यहां कुछ रद्दोबदल भी किया गया है। इस सम्बन्ध में अनेक दृष्टिकोण हो सकते हैं और कमेटी में भी इस प्रश्न पर काफी बहस-मुबाहसा हुआ था और मुझे निश्चय है कि इस सभा में भी होगा। एक शर्त भी लगा दी गयी है, जो जरूरी समझी गयी थी क्योंकि हमारे देश की वर्तमान स्थिति में एक गैर-विभेद-मूलक खण्ड में भी, स्त्री तथा बच्चों के लिए विशेष व्यवस्था करना आवश्यक होगा।

सन्देह दूर करने के लिए, कुछ संशोधनों की सूचना दी गयी है। उप-खण्ड 2—(क) में 'और सार्वजनिक आमोद-प्रमोद के स्थान' जोड़ देने की तजवीज, बहस के दौरान में की गयी थी। उप-खण्ड 2—(ख) में 'सार्वजनिक धन' शब्दों की जगह 'राज्य-धन' शब्द रखे जाने का सुझाव किया गया। सार्वजनिक धन चंदे या निजी प्रबन्ध से भी प्राप्त किया जा सकता है; पर उप-खण्ड में राज्य-धन से अभिप्राय है। उप-खण्ड के लिए सुझाया गया है कि 'make no discrimination' भेदभाव न रखेगा की जगह, 'not discriminate' भेदभाव न करेगा शब्द रखे जाने चाहिए। मैं इन संशोधनों को बाजाब्ता आने पर मंजूर कर लूंगा।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः** क्या सरदार पटेल स्वयं ये संशोधन रख रहे हैं?

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** मैंने कहा है कि उनके बाजाब्ता पेश किये जाने पर मैं उन्हें स्वीकार करने के लिए तैयार हूं।

श्री महावीर त्यागी (संयुक्तप्रांत : जनरल): माननीय प्रस्तावक से क्या मैं एक बात जान सकता हूं? क्या मैं जान सकता हूं कि उप-क्लाज 1 में जो कुछ पहले कहा जा चुका है, उसे उप-क्लाज 2 में दोहराने की उन्हें क्या आवश्यकता पड़ी? मेरा मतलब इन शब्दों से है—

> ''धर्म, नस्ल, जाति या स्त्री-पुरुष के भेद आदि किसी भी कारण निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध में, किसी नागरिक के विरुद्ध कोई भेदभाव न होगा—.....''

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** यह बहुत सीधी बात है। पहला उप-क्लाज राज्य के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में है। दूसरा उप-क्लाज बहुत-सी ऐसी बातों के विषय में है, जिनका राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं है, उदाहरणार्थ सार्वजनिक रेस्तरां और होटल, जो राज्य द्वारा नहीं चलाये जाते। यह एक पूर्णतया भिन्न विचार है, और इसीलिए वह नितान्त आवश्यक है।

***श्री महावीर त्यागीः** इससे मुझे संतोष नहीं हुआ। दूसरा उप-क्लाज होटलों और रेस्तराओं के लिए है। यह कहना कि रेस्तराओं तथा होटल यह या वह करेंगे और व्यापारिक प्रतिष्ठानों (सार्वजनिक रेस्तराओं तथा होटल आदि) में प्रवेश के सम्बन्ध में धर्म, नस्ल, जाति या स्त्री-पुरुष के भेद आदि किसी कारण से किसी भी नागरिक के विरुद्ध कोई भेदभाव न रखा जायेगा, उन प्रतिष्ठानों को (राज्य में) शामिल करना है, जो राज्य में शामिल नहीं हैं। यह उनकी देखभाल की बात है। किन्तु यदि हमें उनके लिए भी कानून बनाना है, जो 'राज्य' में शामिल नहीं हैं, तो हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये। क्या हम यह (सब) एक क्लाज में नहीं रख सकते थे कि रेस्तराओं, होटलों, कुओं, तालाबों, सड़कों आदि के उपयोग के सम्बन्ध में किसी भी नागरिक के खिलाफ कोई भेदभाव न रखा जायेगा? क्लाज इस समय जिस रूप में है, उससे यह मतलब नहीं निकलता। या तो क्लाज की भाषा कुछ बदली हुई होनी चाहिए या फिर हो सकता है कि मैंने स्वयं इस क्लाज का सही मतलब ही नहीं समझा है।

***श्री आर.के. सिधवाः** 'होटल तथा सार्वजनिक रेस्तरां' शब्द विशेष कारणों तथा नियम उद्देश्य से रखे गये हैं। जनता उनका ही उपयोग करती है, आज भी उन्हें खोलने के लिए स्थानीय साधिकार संस्थाओं से लाइसेंस लेने की जरूरत होती है। यह बहुत आवश्यक है कि सार्वजनिक आमोद-प्रमोद के इन स्थानों-होटलों और रेस्तराओं का निश्चित उल्लेख किया जाये, ताकि उनके मालिक यह न कह सकें कि वे उनमें अमुक को आने देंगे और अमुक को न आने देंगे। इन शब्दों का निश्चित और विशिष्ट मतलब है और वे पूर्णतया आवश्यक हैं; अतएव मेरा जोरदार सुझाव है कि ये शब्द रहने दिये जायें, जिनको सरदार पटेल ने प्रस्ताव में रखा है।

***श्री के.एम. मुंशीः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं किः

(1) क्लाज 4 (1) में 'make no discrimination' की जगह 'not discriminate' शब्द रखे जायें।

यह केवल शब्द परिवर्तन का प्रश्न है।

(2) क्लाज 4 सब क्लाज 2 (क) में निम्नलिखित शब्द जोड़े जायें: सार्वजनिक आमोद-प्रमोद के स्थान'

यह भी सन्देह प्रकट किया गया था कि आया सार्वजनिक आमोद-प्रमोद के स्थान व्यापारिक प्रतिष्ठान समझे जा सकते हैं या नहीं, उसे स्पष्ट करने के लिए कि सार्वजनिक आमोद-प्रमोद के स्थान व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं, यह संशोधन पेश किया गया है।

[श्री के.एम. मुंशी]

(3) ''क्लाज 4 उप-क्लाज (2) में ''सार्वजनिक धन' की जगह 'राज्य-धन' शब्द रखे जायें।''

'सार्वजनिक धन' का मतलब कुछ और लगाया जा सकता है, ऐसा धन, निश्चित उद्देश्य के लिए चंदे से एकत्र किया गया रुपया भी हो सकता है। इस संशोधन से यह संदेह दूर हो जायेगा।

***अध्यक्ष:** इस क्लाज के लिए अनेक अन्य संशोधनों की भी सूचना हमें प्राप्त हुई है।

***श्री पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): इस क्लाज के सम्बन्ध में बतौर राय के क्या मैं एक शब्द कह सकता हूं? क्लाज का इतना लम्बा मस्विदा रखकर, हम भारत के पूर्ण विधान पर अस्पृश्यता की छाया डाल रहे हैं। सभा से मेरी अर्ज है कि इस क्लाज विशेष में, यदि हम केवल इतना ही कहें, कि—

> ''केवल धर्म, नस्ल, जाति या स्त्री-पुरुष भेद के कारण, राज्य, किसी भी नागरिक के विरुद्ध किसी भी प्रकार के भेदभाव की अनुमति न देगा।''

—तो यह काफी होना चाहिये और इससे यूनियन सरकार को होटलों, रेस्तराओं, पार्कों, थियेटरों आदि के सम्बन्ध में समुचित व्यवस्था करने का पर्याप्त अवसर भी रहेगा। इसलिए मेरा ख्याल है कि क्लाज से उसका दूसरा भाग, सारा-का-सारा निकाल दिया जाये। हमें यह न भूलना चाहिये कि हमें अपने को केवल उन्हीं अधिकारों तक सीमित रखना है, जो मूल अधिकार हैं और अवश्य रहने चाहियें। एक नागरिक को क्या-क्या विभिन्न अधिकार मिलने चाहियें, उनकी सूची देने का यह स्थान नहीं है। यहां हमें केवल अदालती निर्णय योग्य मूल अधिकारों से मतलब है। खण्डों के भीतर उन तमाम स्थानों की सूची भरना, जिनमें सब लोग प्रवेश पा सकेंगे, अनुचित होगा। अतएव, श्रीमान्, मेरा सुझाव है कि यदि हम इस पूरे खण्ड की जगह केवल निम्नलिखित वाक्य रहने दें, तो इससे हमारा मतलब हल हो जायेगा। यह वाक्य हैं—

> ''केवल धर्म, नस्ल, जाति या स्त्री-पुरुष भेद के आधार पर, राज्य, किसी भी नागरिक के खिलाफ न तो स्वयं कोई भेदभाव रखेगा और न ऐसे भेदभाव की अनुमति ही देगा।''

***श्री सोमनाथ लाहिरी** (बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं मूल प्रस्ताव का समर्थन करता हूं, किन्तु सिद्धान्त या राजनीतिक मत के कारण कोई भेदभाव न बरता जाना चाहिये। इन खण्डों का सारा विचार यह है कि धर्म, जाति आदि के कारण राज्य द्वारा अथवा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा भेदभाव का व्यवहार न होना चाहिये। भारत की आज की अप्राकृतिक परिस्थिति में धार्मिक, साम्प्रदायिक, जातिगत तथा इसी प्रकार के अन्य विभेदों का बोलवाला है। किन्तु व्यवस्थित दशा आने पर, राजनीतिक मतांतरों का सर्वाग्र होना निश्चित है और राज्य अथवा सार्वजनिक संस्थाओं

में, राजनीतिक मतभेद के आधार पर राजनीतिक दलों के सदस्यों के विरुद्ध भेदभाव रखने की प्रवृत्ति पैदा हो सकती हैं आप देखेंगे कि संसार के प्रत्येक देश में, राजनीतिक मत या दल भेद के आधार पर बनने जाने वाले भेदभाव को दूर करने के उपाय किये जा रहे हैं।

अतएव, मैं प्रस्ताव करना चाहता हूं—

'कि खण्ड 4 के सब खण्ड (1) में' ''grounds of'' शब्दों के बाद ''political creed'' जोड़ दिया जाये।

इसी प्रकार मेरा प्रस्ताव है कि—

''क्लाज 4 के उप-क्लाज (2) में, 'जाति' शब्द के बाद 'विश्वास' शब्द जोड़ दिया जाये।''

क्लाज 4 के इसी उप-क्लाज के लिए श्री कामत के संशोधन का भी मैं समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** क्या आपने दोनों संशोधनों का प्रस्ताव किया है?

***श्री सोमनाथ लाहिरीः** श्रीमान्, मैंने दोनों ही संशोधनों का प्रस्ताव किया है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, इस संशोधन का प्रस्ताव करते हुए, मैं धर्म (रिलीजन) और विश्वास (क्रीड) के बीच भेद रखना चाहता हूं। मैं समझता हूं कि 'रिलीजन' (धर्म) शब्द इतना व्यापक नहीं है कि उसमें 'विश्वास' (क्रीड) भी आ जाये। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति रूढ़िवादी या नियमित अर्थों में कोई 'धर्म' स्वीकार न करते हुए भी, कुछ विश्वास (creed) रख सकता है। एक आदमी कह सकता है कि उसका कोई धर्म नहीं है, किन्तु तो भी वह कह सकता है कि वह एक तर्कवादी (रेशनलिस्ट) अथवा स्वतंत्र विचारक है। मैं समझता हूं कि यह एक विश्वास (क्रीड) की बात ही है, जिसे कोई भी व्यक्ति घोषित कर सकता है और फिर भी कह सकता है कि वह हिन्दू, मुस्लिम या सिख धर्म में नहीं है या यों कहिए कि किसी धर्म में नहीं है। इसलिए मेरा ख्याल है कि इस क्लाज में 'विश्वास' (क्रीड) शब्द रखा जाना चाहिए।

राजनीतिक विश्वास के संबंध में मेरे मित्र श्री लाहिरी के सुझाव से मैं सहमत नहीं हूं। मैं जरूर मानता हूं कि ऐसा समय आ सकता है जब हमें ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध भेदभाव रखना पड़े, जिनका राजनीतिक विश्वास हिंसा या ऐसे ही आपत्तिजनक उपायों द्वारा राज्य को उलट देने का हो। ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध हमें भेदभाव से काम लेना पड़ सकता है। पर मेरी अर्ज है कि 'क्रीड' शब्द का मतलब 'पोलिटिकल क्रीड' (राजनीतिक विश्वास-प्रणाली) शब्दों से भिन्न है। जहां तक 'रंग' (कलर) का संबंध है, शायद यह जाति या 'नस्ल' (race) शब्द के अन्तर्गत आ जाता है। किन्तु इसके संबंध में भी, मेरे अपने संदेह हैं। व्यक्तिगत रूप से मैं नहीं समझता कि 'नस्ल' (रेस) शब्द यहां रखा जाना चाहिए, क्योंकि इसका मतलब यह होगा कि हम भारत में कई जातियों का होना स्वीकार करते हैं।

[श्री एच.वी. कामत]

यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिससे मैं सहमत नहीं हूं। तो भी यहां उपस्थित वंश विद्या के विशेषज्ञों (ethnologist) का विचार है कि भारत में बहुत सी जातियां हैं और (race) शब्द का रहना जरूरी है, तो मैं उनकी ही बात मान लूंगा। किन्तु मेरा ख्याल है कि ऐसी दशा में, इस क्लाज में 'रंग' (कलर) शब्द होना चाहिए।

***एक माननीय सदस्यः** रंग से आपका क्या मतलब है?

***श्री एच.वी. कामतः** रंग से मतलब है आपकी चमड़ी का रंग। दो व्यक्ति एक ही वंश के हो सकते हैं पर उनके रंग भिन्न हो सकते हैं। अतएव इसे अधिक स्पष्ट रूप देने के लिए, मेरा प्रस्ताव है कि—

> ''क्लाज 4 के उप-क्लाज (1-2) में 'जाति' शब्द के बाद, 'रंग', 'विश्वास' शब्द जोड़ दिये जाने चाहिएं।''

***श्रीयुत रोहिणी कुमार चौधरीः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं—

> ''क्लाज (4) के उप-क्लाज (2) में 'स्त्री-पुरुष भेद' (सेक्स) शब्द के बाद ये शब्द जोड़ दिये जाने चाहिएं—'अथवा किसी राष्ट्रीय पहनावे के आधार पर'।''

प्रायः यह हंसी की सी बात पड़ती है। किन्तु आज भी, जब हम स्वाधीनता प्रांगण तक पहुंच चुके हैं, ऐसे होटल मौजूद हैं जो भारतीय वेशभूषा वाले व्यक्तियों का स्वागत नहीं करते। मैं हाल की एक घटना जानता हूं, जब मेरे प्रांत के चार भारतीय सज्जनों को एक होटल में रहने की अनुमति इसलिए नहीं दी गयी, चूंकि ये लोग भारतीय पोशाक में थे। मुझे इस बात का डर नहीं है कि भविष्य में भी कोई होटल-मालिक यह रोक लगायेगा। किन्तु दुर्भाग्यवश आज कुछ ऐसे होटल हैं, जिनके मालिक या प्रबंधकर्त्ता यूरोपियन हैं, और इन होटलों में भारतीयों को भारतीय पोशाक में नहीं घुसने दिया जाता अथवा यह शर्त लगायी जाती है कि भारतीय पोशाक में वे भोजन के कमरों (डाइनिंग रूमों) में न दाखिल हों। भविष्य का डर मुझे इसलिए नहीं है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि भारत के स्वाधीन होने पर इस प्रकार के प्रतिबंध तथा रोकें गायब हो जायेंगी। किन्तु मुझे भय इस बात का है कि कहीं यूरोपियन विचारों के ऐसे लोगों के खिलाफ प्रतिशोध या बदले की भावना न जागृत हो जाये और यूरोपियन पोशाक में लोगों को होटलों में आने की अनुमति न मिले। मैं चाहता हूं कि सभा यह संशोधन स्वीकार करे।

***श्री धीरेन्द्रनाथ दत्तः** श्रीमान्, जो संशोधन मेरे नाम से आया है, मैं उसको नहीं रखना चाहता। (पूरकमेंटरी लिस्ट का संशोधन नम्बर 12, तारीख 28 अप्रैल 1947)।

श्री डी. गोविन्ददास (मद्रास : जनरल): *(तेलगू में बोले)* श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि—

''खण्ड 4 के उप-खण्ड 2 (ख) में 'सड़कों' शब्द के बाद 'स्कूल, छात्रावास, होस्टल, मन्दिर या ईश आराधना के सार्वजनिक स्थान' शब्द जोड़ दिये जायें।''

***श्री वी.सी. केशवराव** (मद्रास : जनरल): मेरा प्रस्ताव है कि 'क्लाज 4 के उप-क्लाज 2 (ख) में 'सड़कों' शब्द के बाद 'स्कूल, मन्दिर, या ईश आराधना के सार्वजनिक स्थान' शब्द जोड़ दिए जायें।'

मैं बताना चाहता हूं कि गांवों में यद्यपि कुछ स्कूलों में हरिजन-बालक प्रवेश पा सकते हैं, किन्तु उन्हें सवर्ण हिन्दू छात्रों के साथ नहीं बैठने दिया जाता। इन हरिजन बालकों से फर्श पर अथवा कुछ फासले पर बैठने को कहा जाता है। इस सम्बन्ध में मैं यह भी बताना चाहता हूं शिक्षा प्रत्येक नागरिक का जन्म-सिद्ध अधिकार है। मंदिरों के सम्बन्ध में मेरी अर्ज है कि अछूतों को ईश्वर की आराधना केवल कुछ फासले से करने दी जाती है न कि देवता के सामने। यद्यपि पिछली कई शताब्दियों से अछूत कहते आ रहे हैं कि वे हिन्दू हैं, फिर भी उन्हें इन अधिकारों से वंचित रखा जा रहा है और ईश्वर की आराधना उनसे दूर से कराई जाती है तथा न कि मंदिर के भीतर। मैं समझता हूं कि मंदिरों में अछूतों को प्रवेश न करने देने का मुख्य कारण अस्पृश्यता ही है। मेरी प्रार्थना है कि इन बातों पर विचार किया जाये।

***अध्यक्ष:** श्री पी. कक्कण के नाम से एक और संशोधन है। किन्तु श्री गोविन्ददास तथा श्री केशवराव पहले जिन संशोधनों का प्रस्ताव कर चुके हैं, उनमें श्री पी. कक्करण का यह संशोधन आ जाता है और इसलिए इस संशोधन (संशोधन नम्बर 15) को पेश करने की जरूरत नहीं।

***श्री अजीत प्रसाद जैन** (संयुक्तप्रांत : जनरल): मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''क्लाज 4 सब-क्लाज (2) (ख) में 'सड़कों' शब्द के बाद 'शिक्षा-संस्थाओं, अस्पतालों, डिस्पेंसरियों' शब्द जोड़ें जायें और 'resort' शब्द के बाद 'built' शब्द रखा जाये।''

जो वक्ता अभी मुझसे पहले बोल चुके हैं, उन्होंने शिक्षा-संस्थाओं का जिक्र किया है। मुझे उन तर्कों को दोहराने की जरूरत नहीं हैं जिन स्थानों के सम्बन्ध में कोई भेदभाव न होना चाहिए, उनमें मैंने अस्पताल और डिस्पेंसरियां भी शामिल कर ली हैं, किन्तु शर्त यह है कि इन स्थानों को राज्य-धन से सहायता मिलती हो। शिक्षा-संस्थाएं, अस्पताल तथा डिस्पेंसरियां नैतिक, मस्तिष्क तथा भौतिक उन्नति के लिए बहुत जरूरी हैं और मेरा मत है कि राज्य के धन से किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त करने वाली कोई भी सार्वजनिक संस्था किसी के धर्म, जाति, नस्ल या स्त्री-पुरुष भेद के बिना सब व्यक्तियों के लिए खुली रहनी चाहिए। इस सिलसिले में मैं पैरा 18 (3) (ख) का हवाला देना चाहता हूं, जिसमें कहा गया है कि:

[श्री अजीत प्रसाद जैन]

''स्कूलों को सरकारी सहायता प्रदान करते समय राज्य, अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित स्कूलों के विरुद्ध चाहे वे धर्म, सम्प्रदाय, अथवा भाषा पर आधारित हों, भेदभाव न रखेगी।''

जो संशोधन मैंने सुझाया है, उससे यह व्यवस्था बेकार हो जायेगी, क्योंकि मैं यह अनिवार्य कर देना चाहूंगा कि कोई भी शिक्षा-संस्था, अस्पताल या डिस्पेंसरी, यदि वह राज्य से कोई सहायता या अन्य प्रकार की मदद प्राप्त करती है, तो वह सब व्यक्तियों के लिए खुली रहनी चाहिये। दूसरे मैं चाहता हूं कि 'Resort' शब्द के बाद 'built' दो शब्द और जोड़ दिये जायें। क्योंकि राज्य द्वारा दी जाने वाली मदद एक-मुश्त या संस्था के चलाने के लिए नियत-कालीन सहायता के रूप में दी जा सकती है। क्लाज के वर्तमान स्वरूप में वे संस्थाएं न आ सकेंगी, जिन्हें भवन-निर्माण आदि के लिए राज्य से एक-मुश्त रकम की सहायता दी जाये। इसीलिए मेरा दूसरा सुझाव यह है कि 'रिजार्ट' शब्द के बाद 'बिल्ट' और शब्द जोड़ दिये जायें, ताकि दोनों ही प्रकार की संस्थाएं, जो राज्य के धन से निर्मित हुई हैं या जो राज्य के धन से चलती हैं, इस क्लाज की व्यवस्था के अन्दर आ जायें।

***श्री आर.आर. दिवाकर** (बम्बई : जनरल): मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''क्लाज 4 के उप-क्लाज (2) (ख) में 'और' (एण्ड) शब्द की जगह एक अर्ध-विराम (कॉमा) रखा जाये और 'स्थान (रिजोर्ट) शब्द के बाद ये शब्द जोड़ दिये जायें—और स्कूल, कालेज तथा अन्य संस्थाएं।''

सभा की निगाह में मैं यह बतलाना चाहता हूं कि यह एक समान अवसर का प्रश्न है। सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों, कालेजों तथा अन्य संस्थाओं में सबको समान अवसर दिया जाना चाहिये, ताकि जाति, विश्वास और धर्म आदि के कारण लोगों को किसी संस्था में प्रवेश पाने से वंचित न रखा जा सकें। इस सिलसिले में इस बात की कुछ शंका की जा सकती है कि यदि यह संशोधन स्वीकृत हो गया तो कई ऐसे स्कूलों में जो किसी के नाम से चलते हैं अथवा किन्हीं वर्गों या सम्प्रदायों द्वारा चलाये जाते हैं, बाढ़ आ जायेगी और सभी लोग इन स्कूलों में प्रवेश पाने की मांग करने लगेंगे। किन्तु इस संबंध में मेरा कहना है कि 'आम जनता के व्यवहार के लिये प्रदत्त' शब्दों द्वारा ऐसी स्थिति के लिए काफी संरक्षण मौजूद है। जब तक कि ये संस्थाएं पूर्णत: अथवा अंशत: राज्य के धन से नहीं चलायी जातीं और आम जनता के व्यवहार के लिए नहीं प्रदान की जातीं, तब तक यह संशोधन स्वीकार करने से इस प्रकार का कोई खतरा नहीं उठता। अतएव सभा से मेरी प्रार्थना है कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे।

मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''खण्ड 4 के उप-खण्ड (2) के अन्त में 'आम जनता' शब्दों के बाद इतना और जोड़ दिया जाये—'और (ग) सब प्रकार की सार्वजनिक सवारियों का व्यवहार'।''

मैं नहीं समझता कि इसके सम्बन्ध में मेरे कुछ कहने की आवश्यकता है।

''खण्ड 4 के अन्त में निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ दिया जाये:—

''सार्वजनिक उपस्थिति के स्थान'' में किसी मंदिर से लगा हुआ कोई सहन या मकान भी शामिल है, जहां आम जनता के आमोद-प्रमोद के लिए संगीत तथा नाट्य सम्बन्धी प्रदर्शन, सिनेमा के खेल या अन्य मनोविनोद होते हैं।''

ऐसे बहुतेरे मंदिर हैं, जिनमें ऐसे घर सम्बद्ध हैं, जो 'नट-मंदिर' कहलाते हैं। त्योहारों में तथा अन्य अवसरों पर भी इनमें नाट्य का प्रदर्शन होता और सिनेमा दिखाया जाता है। कभी-कभी इन प्रदर्शनों में वे लोग भाग लेते हैं, जिन्हें आप 'हरिजन' कहते हैं, किन्तु स्वयं हरिजनों को ही उन्हें देखने के लिए अंदर नहीं जाने दिया जाता। लोगों के लिए यह परेशानी का एक बड़ा कारण है। इसलिए मंदिर से सम्बद्ध किसी स्थान में जब कभी भी कोई प्रदर्शन या खेल-तमाशा हो, तो जनता के सब सदस्यों को उसमें प्रवेश पाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** आप एक नया खण्ड जुड़वाना चाहते हैं, या यह खण्ड 4 का संशोधन है?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** यह गलत स्थान पर रखा गया है। इसे खण्ड 6 के साथ एक संशोधन के रूप में रहना चाहिये।

***अध्यक्ष:** आप इसे खण्ड 6 के साथ ले सकते हैं।

अब वे सारे संशोधन, जिनकी सूचना मिली थी, उपस्थित हो चुके हैं। अतएव अब प्रस्ताव पर तथा उसके संशोधनों पर बहस की जा सकती है।

***श्री के.एम. मुंशी:** श्रीमान्, क्लाज 4 में ''स्कूल, आदि'' जोड़ने के सम्बन्ध में मेरी अर्ज है कि यह विषय तब तक के लिए छोड़ दिये जायें जब तक कि हम क्लाज 18 पर नहीं पहुंचते। वर्ना क्लाज 4 पर की बहस अन्य बातों पर चली जायेगी, जिनका कि इस विषय से सम्बन्ध नहीं है। यदि बहस के फलस्वरूप क्लाज 4 में कुछ संशोधन करना आवश्यक हुआ, तो वह बाद में किया जा सकता है। जहां तक शिक्षा-व्यवस्था का सम्बन्ध है, उसकी बहस 18वें क्लाज के साथ अधिक उपयुक्त होगी।

'मंदिरों' से सम्बन्ध रखने वाले संशोधनों के विषय में मेरा यही कहना है कि उनका सम्बन्ध 'अस्पृश्यता' से है और उन्हें छठवें क्लाज के साथ लिया जाना चाहिये। यह चौथा क्लाज केवल इस विषय से ताल्लुक रखता है कि सार्वजनिक

[श्री के.एम. मुंशी]

व्यवहार के स्थानों के सम्बन्ध में नागरिकों के क्या अधिकार हैं।

इसलिए मेरी अर्ज है कि सदस्यों को अनुमति दे दी जाये कि वे 18वें तथा 6वें क्लाजों के साथ अपने इन संशोधनों का प्रश्न उठायें।

***श्री आर.आर. दिवाकर:** श्री मुंशी के सुझाव की दृष्टि से मैं स्कूलों से सम्बन्ध रखने वाले अपने संशोधन को अभी स्थगित रखता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं अर्ज करना चाहूंगा कि कुंओं, तलाबों आदि के अलावा जल के अन्य भी साधन है जैसे नहरें। क्लाज 4 में यह भी आ जाने चाहियें। इसलिए मैं ''तालाबों'' शब्द के बाद ''और जल-सप्लाई के अन्य साधन'' शब्द जोड़ना आवश्यक समझता हूं। ऐसा न होने से त्रुटि रह जायेगी।

इसके बाद फिर चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता देने में भी धर्म आदि की बिना पर भेदभाव बरता जा सकता है। यह एक खतरनाक बात होगी। इसलिए श्रीमान्, यदि आप नोटिस नहीं दिये जाने की खामी पर अधिक आपत्ति न करें, तो मैं प्रार्थना करूंगा कि ''सार्वजनिक उपस्थिति के स्थान'' के बाद ''तथा चिकित्सा-संस्थाएं'' शब्द जोड़ दिये जायें। तब उसका रूप इस प्रकार हो जायेगा—

> ''सरकारी धन द्वारा पूर्णत: या अंशत: चलने वाले अथवा आम जनता के व्यवहार के लिए प्रदत्त कुओं, तालाबों, सड़कों तथा सार्वजनिक उपस्थिति के स्थानों चिकित्सा-संस्थाओं का उपयोग''।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, मैं एक बात स्पष्ट करवाना चाहता हूं। फर्ज कीजिये कि किसी एक छोटे गांव में कोई जन-हितकारी व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थान में एक कुआं बनवाता है, किन्तु उसने इस कुएं को सार्वजनिक उपयोग के लिए नहीं दिया, यद्यपि गांव के कुछ व्यक्तियों को छोड़कर अन्य सब लोगों को उसका इस्तेमाल करने दिया। इस प्रकार उसने एक सार्वजनिक स्थान तो बनाया किन्तु उसे आम जनता के व्यवहार के लिए प्रदत्त नहीं किया; ऐसी दशा में क्या होगा और उस समय की स्थिति क्या होगी? खण्ड का जो स्वरूप है, उसका शब्द-विन्यास ठीक नहीं है और यह सभा सम्भवत: चाहेगी कि यहां वाक्य रचना कुछ और अच्छी हो।

***अध्यक्ष:** मैं प्रस्तावक से प्रार्थना करूंगा कि वे अब अपना उत्तर दें।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** पहला संशोधन श्री सोमनाथ लाहिरी का है। वे चाहते हैं कि राजनीतिक विश्वास के आधार पर कोई भेदभाव न बरता जाये। मैं नहीं जानता कि किस भेदभाव की ओर उनका संकेत है। भेदभाव विरोधी यह खण्ड केवल धर्म, जाति, वर्ण और स्त्री-पुरुषगत भेदभाव तक ही सीमित है या तज्जन्य भेदभावों के विरुद्ध ही उसमें व्यवस्था रखी गई है। वह चाहते हैं कि राजनीतिक-विश्वास के आधार पर बरते जाने वाले भेदभाव को भी

यहां शामिल कर लिया जाये। मेरी समझ में राजनीतिक मत के कारण बरते जाने वाले भेदभाव की निषेधात्मक व्यवस्था का विचार बिल्कुल बेतुका है। राजनीतिक विश्वास तो किसी भी तरह का हो सकता है। कुछ ऐसे भी राजनीतिक विश्वास हो सकते हैं जो न केवल भेदभाव के योग्य हों बल्कि हो सकता है कि बिल्कुल ही कुचल दिये जाने योग्य हों।

अतएव, मैं समझता हूं कि यह (संशोधन) यहां के लिए मौजूं नहीं हैं दूसरा संशोधन 'रंग' के सम्बन्ध में है। मैं नहीं जानता कि इसका क्या मतलब है। स्वयं भारतीयों में भांति-भांति के 'रंग' हैं। क्या हमें उन सबके लिए व्यवस्था करनी है। इसलिए मैं नहीं समझता कि ये सब संशोधन कुछ भी आवश्यक हैं। स्कूलों और कालेजों से सम्बन्ध रखने वाले संशोधन की व्यवस्था उस समय की जा सकेगी, जब हम उस विषय से संबंध रखने वाले खण्ड पर विचार करेंगे।

मुझे हर्ष है कि सारी बातों को लेते हुए इस सभा का मत है कि इस खण्ड की शब्दावली ठीक रखी गयी है।

अब केवल श्रीयुत रोहिणी कुमार चौधरी का एक संशोधन रह जाता है। मैं नहीं समझता कि वास्तव में यह जरूरी है। किसी भी प्रकार की पोशाक पर कोई प्रतिबंध नहीं है। मैं अपनी मौजूदा पोशाक में वाइसराय-भवन भी जाता हूं और साधारण से साधारण किसान के घर भी जाता हूं। पोशाक के कारण अब कोई रोक नहीं है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** कुछ होटलों और रेस्तराओं में, भारतीय राष्ट्रीय पोशाक पहने हुए भारतीयों के प्रवेश पर रोक है।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** सब विदेशी जा रहे हैं। आपको इस कारण डरने की आवश्यकता नहीं है। पोशाक जैसी बातें मूल अधिकारों में नहीं रखी जा सकती। यदि सारा संसार हमारे मूल अधिकारों के अन्दर ऐसी बातों की व्यवस्था देखेगा, तो स्वभावत: वह समझेगा कि हम यह भी नहीं जानते कि अपने राष्ट्रजनों के साथ कैसे व्यवहार करें और अपने साथियों के संग हमारा क्या बर्ताव होना चाहिए। मैं अपने मित्र को आश्वासन दे सकता हूं कि पहनावे या पोशाक के कारण अब किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। मैं नहीं समझता कि मूल अधिकारों के साथ इन बातों की व्यवस्था करना उचित होगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** कुछ होटलों और रेस्तराओं में भारतीयों के प्रवेश पर उनकी पोशाक के कारण जो रोक है, उसके विषय में आप क्या कहते हैं?

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** यह सारा विचार गुलामी के ख्याल से पैदा हुआ है। गुलामी का ख्याल हमारे कुछ लोगों पर सवार रहा है। किन्तु अब गुलामी की छाया भी नहीं रह गयी है।

***अध्यक्ष:** श्री देशमुख ने सुझाया है कि यदि आप निम्नलिखित रूप में एक खंड रखें तो वह काफी होगा—

[अध्यक्ष]

''केवल धर्म, आदि..... के आधार पर राज्य न तो कोई भेदभाव रखेगा और न ऐसा भेदभाव रखने की अनुमति ही देगा।''

ख्याल यह है कि यदि आप खण्ड को इस रूप में रखते हैं, तो उसके अंदर सारी बातें आ जायेंगी और दूसरे उप-खण्ड की जरूरत न रह जायेगी। इस रूप में निजी संस्थाएं तथा सरकारी संस्थाएं, दोनों ही आ जाती हैं। हम एक व्यापक अर्थों वाला खंड रख सकते हैं।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** यदि नियमित रूप में कोई संशोधन न हो तो मैं मौजूदा खण्ड को उसके वर्तमान रूप में ही रखना पसन्द करूंगा।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों को एक-एक करके सभा के सामने रखूंगा। पहला संशोधन श्री मुंशी का है, जो इस प्रकार है—

'' 'स्टेट शैल मेक नो डिस्क्रिमिनेशन' (राज्य कोई भेदभाव न रखेगा) शब्दों की जगह, 'स्टेट शैल नाट डिस्क्रिमिनेट' (राज्य भेदभाव न करेगी) शब्द रखे जायें।''

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** मुझे संशोधन स्वीकार है।

***अध्यक्षः** प्रश्न है कि उपयुक्त संशोधन सभा द्वारा स्वीकार किया जाये।

प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** दूसरा संशोधन इस प्रकार है—

''खण्ड 4 के उपखण्ड (2) (क) में 'होटल' शब्द के बाद 'तथा सार्वजनिक आमोद-प्रमोद के स्थान' शब्द जोड़ दिये जायें।''

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** मुझे संशोधन स्वीकार है। 'होटल' शब्द से पहले का 'तथा' निकाल दिया जाना चाहिये और 'होटल' शब्द के बाद रखा जाना चाहिये।

***अध्यक्षः** संशोधन यह है।

''खण्ड 4 के उप-खण्ड (2) (क) में, 'होटल' शब्द के पहले का 'तथा' निकाल दें और 'होटल' शब्द के बाद ये शब्द जोड़ देवें—'तथा सार्वजनिक आमोद-प्रमोद के स्थान।''

संशोधन सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** दूसरा संशोधन खंड 4 के उपखड (2) (ख) का है, जिसमें 'सार्वजनिक धन' शब्दों की जगह 'राज्य-धन' शब्द रखे जाने का प्रस्ताव किया गया है।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** मुझे संशोधन स्वीकार है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है कि—

''खंड 4 के उपखंड (2) (क) में 'सार्वजनिक धन' शब्दों की जगह पर 'राज्य-धन' शब्द रखें।''

संशोधन सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न है कि—

'खंड 4 के उपखंड (1) में 'grounds' शब्दों के बाद 'political creed' शब्द जोड़ दें।

सभा द्वारा प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न है कि—

''खंड 4 के उपखंड (2) में 'जाति' शब्द के बाद 'विश्वास' शब्द रखे जायें।''

सभा द्वारा प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

***श्री एच.वी. कामतः** अपने संशोधन नम्बर 10 के सम्बन्ध में मैं उसका यह अंश वापस ले लेना चाहता हूं, जो 'रंग' शब्द जोड़े जाने के विषय में है। किन्तु स-सम्मान मेरा कहना है कि मुझे अब भी संतोष नहीं हुआ है कि धर्म और 'विश्वास' (रिलिजन और क्रीड) एक ही हैं। इसलिए संशोधन का वह अंश जो 'विश्वास' (क्रीड) शब्द शामिल किये जाने के विषय में है, मैं अब भी विचारणार्थ रखना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** इसी प्रकार का एक संशोधन श्री लाहिरी के नाम से सभा के विचारणार्थ अभी-अभी पेश किया जा चुका है और सभा ने उसे अस्वीकार कर दिया है।

प्रश्न है कि—

''खंड 4 के उप-खंड (2) में 'स्त्री-पुरुष विभेद' के बाद ये शब्द रखे जायें 'या किसी राष्ट्र द्वारा पहनी जाने वाली पोशाक''।

प्रस्ताव सभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न है कि—

''खंड 4 के उप-खंड (2) (ख) में 'सड़कों' शब्द के बाद स्कूल, छात्रावास (होस्टल), मंदिर या ईश-आराधना के स्थान' जोड़ दें।''

प्रस्ताव सभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्षः** संशोधन नम्बर 14 में भी यही बात है, इसलिए वह भी अस्वीकृत है।

प्रश्न है कि—

''खंड 4 के उप-खंड (2) (ख) में 'सड़कों' शब्द के बाद 'शिक्षा-संस्थाओं, अस्पतालों या डिसपेंसरियों' शब्द जोड़ दिये जायें।''

प्रस्ताव सभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न है कि—

''खंड 4 के उप-खंड (2) (ख) में 'resort' शब्द के बाद 'built' और शब्द जोड़ दें।''

प्रस्ताव सभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

(श्री दिवाकर का सार्वजनिक सवारियों से सम्बन्धित संशोधन वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** 19 नम्बर का संशोधन वापस ले लिया गया। प्रश्न है कि—

खंड 4 के अन्त में निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ दिया जाये:

''सार्वजनिक उपस्थिति के स्थान (प्लेस ऑफ पब्लिक रिजार्ट) में किसी मन्दिर से सम्बन्ध कोई सहन या मकान भी शामिल हैं, जहां आम जनता के आमोद-प्रमोद के लिए संगीत तथा नाट्य सम्बन्धी प्रदर्शन, सिनेमा के खेल या अन्य मनो-विनोद होते हैं।''

प्रस्ताव सभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न है कि—संशोधित रूप में खंड 4 स्वीकार किया जाये।

प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** श्रीमान्, मेरी प्रार्थना है कि खण्ड 5 का विचार स्थगित रखा जाये, क्योंकि उस पर अभी और गौर करना जरूरी है और मुझे खण्ड 6 का प्रस्ताव करने की अनुमति दी जाये। खण्ड 6 इस प्रकार है—

''6—अस्पृश्यता, किसी रूप में हो, खत्म की जाती है और उसके कारण लगाई जाने वाली कोई भी असमर्थता एक अपराध होगा।''

इस प्रश्न पर कोई मतभेद नहीं हो सकता। यह अब एक सर्वमान्य बात है और मूल अधिकारों के अन्तर्गत इसकी व्यवस्था रहनी चाहिये और हर किसी व्यक्ति को, जिसे इसके कारण कोई असमर्थता हो, अदालत में चारा-जोई करने और इंसाफ कराने का अधिकार मिलना चाहिये। मुझे आशा है कि इस पर कोई संशोधन न होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि खण्ड 6 में 'अस्पृश्यता'' शब्द के बाद 'प्रवेश-निषेध' (अनअप्रोचेबिलिटी) शब्द रखा जाये और 'any' शब्द के बाद 'and every' शब्द जोड़ दिये जायें।

इस संशोधन द्वारा मैं इस खण्ड को अधिक व्यापक बनाना चाहता हूं क्योंकि भारत के कुछ भागों में विशेषतः मालाबार के कुछ स्थानों में कुछ वर्ष पहले जैसा कि मैं खुद जानता हूं, अस्पृश्यता के अतिरिक्त 'प्रवेश-निषेध' की भी प्रथा कायम थी; किन्तु मैं नहीं जानता कि अब वहां क्या है? इसीलिए मैंने सोचा कि यदि आप इस खण्ड में 'प्रवेश-निषेध' (अनअप्रोचेबिलिटी) और शामिल कर लें तो उसका अर्थ अधिक व्यापक हो जायेगा। दूसरा छोटा-सा संशोधन जिसे मैं पेश

करना चाहता हूं, विशुद्धतः शाब्दिक है। इससे अर्थों में कोई अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि केवल खण्ड के महत्त्व पर जोर पड़ता है।

***श्री एस. नागप्पाः** श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि खण्ड 6 में, 'लगायी जाने वाली कोई असमर्थता' शब्दों की जगह पर 'व्यवहार में लायी जाने वाली कोई असमर्थता' शब्द रखे जायें। इसका कारण यह है कि असमर्थता 'लगाने' (इम्पोजीशन) से तात्पर्य निकलता है कि एक पक्ष, जो दूसरे पक्ष पर असमर्थता 'लगाता है', अपराधी—दोषी है। इसलिए मेरा सुझाव है कि यदि अस्पृश्यता किसी व्यक्ति द्वारा व्यवहृत हो तो यह अपराध मानी जाये। मैं नहीं समझता कि यह संशोधन किये बिना खण्ड की प्रस्तुत व्यवस्था किसी व्यक्ति को दंड देने के लिए पर्याप्त है। अतएव सभा से मेरी प्रार्थना है कि मेरा संशोधन स्वीकार करके अस्पृश्यता का व्यवहार एक दंडनीय अपराध बनाया जाये।

***श्री पी. कुन्हीरमणः** श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि खण्ड 6 में 'अपराध' शब्द के बाद 'कानून द्वारा दंडनीय' शब्द जोड़ दिये जायें।

असली खण्ड में 'अपराध' की घोषणा तो कर दी गयी है, जिससे समझा जाये कि वह दंडनीय होगा; किन्तु मैं इस बात को अधिक स्पष्ट कर देना चाहता हूं। यह केवल एक शाब्दिक संशोधन है और मैं इसे स्वीकार किये जाने का अनुरोध करता हूं। साथ ही, यदि हम केवल इतना ही रखते हैं कि यह 'एक अपराध है' तो हो सकता है कि आगे चलकर इसका यह अर्थ निकाला जाये कि यह 'एक कानूनी अपराध' नहीं है। इसीलिए आवश्यकता है कि यह स्पष्ट कर दिया जाये।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव तथा उसके संशोधन अब विचारार्थ उपस्थित हैं।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** पहला संशोधन श्री कामत का है। वे चाहते हैं कि खण्ड में 'प्रवेश-निषेध' (unapproachability) शब्द जोड़ दिया जाये। यदि मूल अधिकारों के अन्तर्गत 'अस्पृश्यता' एक अपराध मानी गयी, तो व्यवस्थापिका सभा का जो कानून निर्मित होगा, उसमें ये सब बातें यथोचित रूप में रख ली जायेंगी। निष्कर्ष के आधार पर इस प्रकार की व्यवस्था करना न तो मैं उचित समझता हूं और न बुद्धिमानी ही; इसलिए यह संशोधन मुझे स्वीकार नहीं है।

दूसरा संशोधन श्री नागप्पा का है। इनका सुझाव है कि ''imposition of any disability'' की जगह ''observance of any disability'' शब्द रखें जायें। मैं नहीं समझता कि इनका मतलब क्या है? मैं एक आदमी को दूसरे पर कोई असमर्थता लगाते देख सकता हूं तो मैं अपराधी ठहरूंगा, क्योंकि मैंने देखा है। मैं नहीं समझता कि इस प्रकार की चरम स्थितियों की व्यवस्था रखी जानी चाहिये? मुख्य बात अस्पृश्यता का निवारण है और यदि यह अस्पृश्यता गैर-कानूनी या अपराध घोषित कर दी जाती है, तो यह अलग है।

दूसरे संशोधन का प्रस्ताव श्री कुन्हीरमण ने किया था। इनका सुझाव है कि

[माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल]

'कानून द्वारा दंडनीय' शब्द जोड़ दिये जायें। हमने व्यवस्था की है कि अस्पृश्यता रखना अपराध होगा। शायद संशोधन के प्रस्तावक का ख्याल है कि अपराध क्षम्य भी हो सकता है और कभी-कभी उसके लिए पुरस्कार भी दिया जा सकता है। अपराध तो अपराध ही है, यह रखने की जरूरत नहीं है कि अपराध कानून द्वारा दण्डनीय होगा। श्रीमान्, मैं यह संशोधन भी नहीं स्वीकार करता।

इसके बाद, यह भी प्रस्ताव किया गया है कि 'किसी रूप की' शब्दों की जगह 'सब रूपों की' शब्द रखे जायें। 'अस्पृश्यता किसी रूप की' कानूनी शब्दावली है और उसमें कुछ जोड़ने की जरूरत नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** माननीय सरदार पटेल ने जो बातें कहीं हैं, उनका ख्याल करते हुए मैं अपने संशोधन सभा की अनुमति से वापस लेना चाहता हूं।

(सभा की अनुमति से प्रस्ताव वापस ले लिये गये।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है कि—

''खण्ड 6 में 'imposition of any disability' शब्दों की जगह 'observance of any disability' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव सभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

***श्री पी. कुन्हीरमणः** श्रीमान्, प्रस्तावक महोदय ने जो बातें कही हैं, उनके ख्याल से मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

(संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** प्रश्न है कि खण्ड 6 स्वीकार किया जाये।

प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** मुझे कई सदस्यों से यह प्रार्थना प्राप्त हुई है कि जिन खण्डों पर अभी विचार नहीं हुआ है, उन पर संशोधन पेश करने की सूचना (नोटिस) देने की अनुमति उन्हें प्रदान की जाये। इसका कारण वे यह बताते हैं कि कल उन्हें रिपोर्ट बड़ी देर से मिली थी, जिससे 5 बजे से पहले-पहले वे संशोधनों की सूचना नहीं दे सके। हमारे सामने पहले ही से संशोधनों के बहुत से प्रस्ताव हैं और मैं नहीं समझता कि आया यह सभा और संशोधन लेने के लिए समय बढ़ाना पसंद करेगी।

***श्री महावीर त्यागीः** इससे कोई फर्क न पड़ेगा, क्योंकि आपकी काम निपटाने की गति बड़ी तेज है।

***अध्यक्षः** यह मेरा निपटाना नहीं है, बल्कि सभा यह कार्य कर रही है।

यदि 5 बजे तक हमें संशोधन नहीं मिलते हैं, तो उसमें यह कठिनाई है। संशोधनों की क्रम-सूची तैयार करनी होती है, वे टाइप किये जाते हैं और फिर 'साइक्लोस्टाइल' होते हैं और शाम को कर्फ्यू आर्डर के कारण बहुत कम समय मिलता है। पिछले कई मौकों पर उन्हें रात को काफी देर तक काम करना पड़ा। यदि

सदस्य जन, इन संशोधनों की प्रतियां लेने का अपना अधिकार त्याग दें, तो शायद मैं उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लूं।

***रायबहादुर श्यामनंदन सहाय** (बिहार: जनरल): फिर ऐसे भी संशोधन होंगे, जो कार्यालय को कल 5 बजे प्राप्त हों।

***अध्यक्ष:** जो पहले से प्राप्त हो चुके हैं, वे स्वीकार कर लिये जायेंगे और आज भी यदि संशोधनों की सूचना 2 बजे तक दे दी गयी तो वे भी शामिल कर लिए जायेंगे। किन्तु इसके बाद फिर बड़ी कठिनाई होगी। हर दशा में संशोधन कल सवेरे बैठक शुरू होने से पहले तक दिये जा सकते हैं।

समय की बात तो यह है कि आज साढ़े-आठ बजे हमारी बैठक शुरू हुई थी और तब से 4 घंटे तक हमने काम किया है। किन्तु मुझे बताया गया है कि कुछ सदस्यों को वह समय सुविधापूर्ण नहीं है और हमारे कार्यालय के कर्मचारियों के लिए तो यह और भी अधिक असुविधाजनक है, क्योंकि उनमें से बहुतेरे शहर के दूरवर्त्ती स्थानों में रहते हैं उन्हें सवेरे के 8 बजे से शाम को देर तक काम करना होता है। यदि सब को मंजूर हो, तो कल सवेरे की बैठक हम 9 बजे से रखें।

***कई माननीय सदस्य:** हां, हां।

***अध्यक्ष:** सभा अब स्थगित होती है।

इसके बाद 'परिषद्' बुधवार, 30 अप्रैल 1947 के 9 बजे (दिन) के लिए स्थगित हुई।

परिशिष्ट

भारतीय विधान-परिषद्

नं. सीए-24-काम-47 कौंसिल हाउस,
नई दिल्ली, 23 अप्रैल सन् 1947 ई.

प्रेषक:

माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल,
सभापति—अल्पसंख्यक समुदाय, मौलिक अधिकारादि
सम्बन्धी सलाहकार कमेटी।

सेवा में,

अध्यक्ष महोदय,
भारतीय विधान-परिषद्।

श्रीमान्,

'भारतीय विधान-परिषद्' द्वारा 24 जनवरी सन् 1947 को नियुक्त सलाहकार कमेटी के सदस्यों की ओर से, मुझे मौलिक अधिकारों के विषय में यह आन्तरिक रिपोर्ट उपस्थित करने का गौरव प्राप्त हुआ है। अपने निष्कर्षों तक पहुंचने में, कमेटी ने न केवल मौलिक अधिकार उप-कमेटी की रिपोर्ट पर, वरन् अल्पसंख्यक उप-कमेटी द्वारा की गयी उसकी आलोचना पर भी ध्यान दिया है।

2. मौलिक अधिकार उप-समिति ने सिफारिश की थी कि मूल-अधिकारों की सूची दो भागों में तैयार की जानी चाहिये, जिन में से प्रथम भाग में वे अधिकार हों, जिन्हें उचित कानूनी कार्रवाई के जरिये कार्यान्वित कराया जा सके और दूसरे भाग में, सामाजिक नीति के वे निर्देशनात्मक सिद्धांत हों जो यद्यपि अदालत द्वारा कार्यान्वित न कराये जा सकें, किन्तु फिर भी, देश की शासनव्यवस्था के अन्तर्गत जो मौलिक समझे जायेंगे। इन बाद वाले मूल-अधिकारों के संबंध में, हम अपनी रिपोर्ट बाद में पेश करना चाहते हैं; प्रस्तुत रिपोर्ट में, हमने केवल न्याय्य (न्याय-क्षम) मौलिक अधिकारों का ही विषय लिया है।

3. विधान द्वारा इन अधिकारों को न्याय्य (न्याय-क्षम) घोषित किये जाने को हम बहुत महत्त्व देते हैं। कुछ मामलों में नागरिक के अधिकार की रक्षा-व्यवस्था अमेरिकन विधान तथा अभी हाल के कुछ लोकतंत्रात्मक विधानों में दी गयी एक विशेष व्यवस्था है। विधान-कानून के उस अंश में, जिसमें 'सुप्रीम कोर्ट' (सर्वोच्च न्यायालय) के अधिकारों एवं अधिकार-क्षेत्र का उल्लेख रहेगा, उन उपायों के साथ की व्याख्या के लिए उपयुक्त और पर्याप्त व्यवस्था रखनी होगी जिनके द्वारा इन मौलिक अधिकारों के कार्यान्वित कराया जा सके। परिशिष्ट के 22वें वाक्यांश में इन उपायों का उल्लेख साधारण शब्दों में किया गया है।

4, 16 मई, सन् 1946 के वक्तव्य के 20वें वाक्यांश द्वारा मौलिक अधिकारों के यूनियन के गुटों के (यदि गुट बनाए गए तो) तथा यूनिटों (घटकों या इकाइयों) के विधानों के बीच बांटने की संभावना व्यक्त की गयी है। हमारा मत है कि यूनियन के नागरिकों के मौलिक अधिकारों का कुछ भी मूल्य न रह जायेगा, यदि वे हर 'गुट' अथवा 'यूनिट' के लिए अलग-अलग निश्चित किये गये अथवा सर्वत्र एक-सदृश उनको कार्यान्वित न कराया जा सके। हमारी सिफारिश है कि इस रिपोर्ट के परिशिष्ट में दिये गये अधिकार विधान में सम्मिलित कर लिये जायें, ताकि यूनियन अथवा यूनिटों के, सभी अधिकारी उनके पाबंद रहें।

5. वाक्यांश 10 में, समस्त यूनियन में नागरिकों के बीच व्यापार, वाणिज्य तथा आदान-प्रदान की स्वतंत्रता का उल्लेख है। इस वाक्यांश पर विचार करते समय, हमने यह बात भी ध्यान में रखी है कि कई देशी राज्य अपने राजस्व के एक बड़े भाग के लिए आन्तरिक जकात पर आश्रित हैं और हो सकता है कि विधान-कानून के अमल में आते ही, इन करों को तत्काल बंद करना उनके लिए आसान हो। अतएव, हम समझते हैं कि यूनियन के लिए उचित होगा कि इन देशी राज्यों के वर्तमान अधिकारों को दृष्टि में रखकर वह उनके साथ समझौते कर ले, ताकि विधान द्वारा निश्चित अधिकतम अवधि तक के लिए इन रियासतों को समय दिया जा सके, जिसके भीतर वे इस आन्तरिक जकात-करों को समाप्त कर दें और यूनियन में सर्वत्र पूर्ण, स्वतंत्र वाणिज्य-व्यापार की स्थापना हो जाये।

6. हर 'यूनिट' में यूनियन के सार्वजनिक कानूनों, कागज-पत्रों तथा अदालती कार्यवाहियों का हर इकाई में पूर्ण विश्वास तथा मान हो और एक 'यूनिट' के अदालती फैसलों तथा आज्ञाओं का पालन दूसरे 'यूनिटों' में पालन किया जाये, इसके संबंध में हमने विशेष व्यवस्था की है। हम इस व्यवस्था को बहुत महत्त्वपूर्ण समझते हैं और हमारा ख्याल है कि मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत इस व्यवस्था का रखा जाना सर्वथा उचित है।

7. वाक्यांश 2 में कहा गया है कि यूनियन के प्रदेशों में जारी सारे मौजूदा कानून, रेग्युलेशन, विज्ञप्तियां, प्रथाएं तथा चलन जो मौलिक अधिकारों के प्रतिकूल होंगे, अपनी इस प्रतिकूलता की सीमा तक रद्द समझे जायेंगे। यद्यपि अपने विचार-परामर्श तथा कार्यवाही के समय हमने मौजूदा कानून की व्यवस्थाओं को ध्यान में रखा है, किन्तु फिर भी, इस बात पर पूरी तरह से विचार कर सकने का समय हमें नहीं मिला कि मौजूदा सारे कानूनों पर, इस वाक्यांश का क्या असर पड़ेगा। अतएव, हमारी सिफारिश है कि इस वाक्यांश को अन्तिम रूप से विधान में सम्मिलित करने से पहले, इस प्रकार की जांच करा ली जाये।

8. मौलिक-अधिकार उप-समिति का मत था कि कानूनी अदालत द्वारा 'राज्य' के विरुद्ध प्रतिकार पा सकने का नागरिक का अधिकार, अनुचित बंधनों द्वारा किसी प्रकार जकड़ा न जाये। तो भी उप-कमेटी इस विषय में कोई उपयुक्त सूत्र निर्मित

नहीं कर सकी, क्योंकि इस मामले पर जितनी छान-बीन करना आवश्यक है उसके लिए उप-कमेटी के पास काफी समय नहीं था। हमारे विचार-परामर्श के समय यह भी सुझाया गया कि विधान में कुछ अतिरिक्त मौलिक अधिकार शामिल कर लिये जायें। हमें इन बातों पर विचार करने का समय नहीं मिला; यथासमय हम ऐसा करेंगे और इस विषय में जो भी सिफारिशें हमें करनी होंगी, हम उन्हें अपनी दूसरी रिपोर्ट में शामिल कर देंगे।

9. 'मौलिक अधिकार उप-समिति' तथा 'अल्पसंख्यक उप-समिति' इस बात पर एक-राय थीं, कि निम्नलिखित व्यवस्था, मौलिक अधिकारों की सूची में शामिल की जानी चाहिये—

(1) ''हर नागरिक, जिसकी अवस्था 21 वर्ष से कम न हो, 'यूनियन' या उसके किसी 'यूनिट' (घटक) के व्यवस्थापक-मंडल के किसी भी निर्वाचन में अथवा जहां व्यवस्थापक मंडल दो धारा-सभाओं का हो वहां उसकी नियम धारा सभा के निर्वाचन में, मत देने का अधिकारी होगा—किन्तु दिमागी खराबी, दुराचरण या कानूनी अपराध के आधार पर लगायी गयी अयोग्यता-संबंधी शर्तों के आधीन तथा उचित निर्वाचन-क्षेत्र के भीतर निवास संबंधी उन शर्तों के आधीन, जो कानून द्वारा या कानून के अनुसार लगायी गयी हों।

(2) कानून द्वारा स्वतंत्र तथा गुप्त मतदान और व्यवस्थापक-मंडल के नियतकालिक निर्वाचनों की भी व्यवस्था की जायेगी।

(3) यूनियन अथवा किसी भी यूनिट के सारे निर्वाचनों की निगरानी, निर्देशन और नियंत्रण और चुनाव अदालतों (इलेक्शन ट्राइब्यूनल्स) की नियुक्ति के अधिकार, यूनियन या उसके यूनिट के (जैसी भी स्थिति हो) 'निर्वाचन-कमीशन' को प्राप्त होंगे, जो सदैव यूनियन के कानून के अनुसार नियुक्त किया जायेगा।''

सिद्धांत रूप में इस वाक्यांश से सहमत होते हुए भी, हमारी सिफारिश है कि मौलिक अधिकारों की सूची में सम्मिलित किये जाने के बजाय, वह विधान में किसी दूसरे स्थान में रखा जाये।

भवदीय,

(हस्ताक्षर) वल्लभ भाई पटेल,

सभापति,

अल्पसंख्यक समुदाय. मौलिक अधिकारादि

संबंधी सलाहकार कमेटी

परिशिष्ट

न्याय्य मौलिक अधिकार

परिभाषाएं

1. जब तक संदर्भ में इसके विपरीत न हो—

(1) 'राज्य' शब्द में जहां तक इस भाग का सम्बन्ध है, यूनियन और प्रदेशों की धारा-सभायें और सरकार और यूनियन की सीमा के अन्दर सब स्थानीय और दूसरे अधिकारी शामिल हैं।

(2) 'यूनियन' से तात्पर्य भारतीय यूनियन से है।

(3) 'यूनियन के कानून' में यूनियन की धारा-सभा का बनाया हुआ हर एक कानून और यूनियन के अन्दर या उसके किसी भाग में जो कोई भारतीय कानून इस समय प्रयोग में हो, शामिल है।

कानूनों का प्रयोग

2. सब ऐसे वर्तमान कानून, विज्ञप्तियां, नियम रीति या रिवाज जो कि यूनियन के प्रदेशों में प्रयोग में हों और उन अधिकारों के विपरीत हों जिनके बारे में विधान के इस भाग में आश्वासन दिया गया है, वे जिस सीमा तक उनके विपरीत हों, मंसूख समझे जायेंगे और बिना विधान में संशोधन दिये हुये ऐसे किसी अधिकार को न तो खत्म किया जायेगा और न उसे कम किया जायेगा।

नागरिकता

3. हर एक ऐसा व्यक्ति जिसका जन्म यूनियन की सीमा के अन्दर हुआ हो और जो उसकी अधिकार सीमा में हो, हर एक ऐसा व्यक्ति जिसके मां बाप में से कोई भी उसके जन्म के समय यूनियन का नागरिक हो और हर एक ऐसा व्यक्ति जिसे कानून के अनुसार नागरिक बना लिया गया हो, यूनियन का नागरिक समझा जायेगा।

यूनियन की नागरिकता प्राप्त करने और उसको खत्म करने के बारे में अन्य व्यवस्था यूनियन के कानून द्वारा की जा सकेगी।

समता के अधिकार

4. (1) राज्य की ओर से किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, जाति, वर्ण, या लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं बरता जायेगा।

(2) किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, जाति, वर्ण या लिंग में से किसी आधार पर नीचे दी हुई बातों के संबंध में भेदभाव नहीं बरता जायेगा—

(क) व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में प्रवेश के सम्बन्ध में जिनमें सार्वजनिक रेस्टोरेंट, होटल और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान शामिल हैं।

(ख) कुओं, तालाबों, सड़कों और दूसरे सार्वजनिक सम्मिलन के स्थानों के प्रयोग के सम्बन्ध में, जिनका सारा या कुछ खर्च सरकारी कोष से पूरा किया जाता हो या जो सार्वजनिक प्रयोग के लिये भेंट किये गये हों।

मगर शर्त यह है कि इस वाक्यखंड में दिये हुये किसी आदेश से औरतों और बच्चों के लिये अलग प्रबन्ध करने में बाधा नहीं होगी।

5. (क) सरकारी नौकरी के सम्बन्ध में सब नागरिकों को समान अवसर मिलेगा:

(ख) कोई नागरिक, धर्म, जाति, वर्ण, लिंग, वंश, जन्म-स्थान के आधारों पर या इनमें से किसी आधार पर सरकारी नौकरी के अयोग्य न समझा जायेगा।

यदि राज्य यह समझे कि कुछ वर्गों का सरकारी नौकरियों में उचित प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है तो उनके लिये जगहें सुरक्षित रखने में राज्य को यहां दिये हुये किसी आदेश से बाधा नहीं होगी।

यदि इस आशय का कोई कानून बनाना हो कि किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के कामों के प्रबन्ध, शासन-प्रबन्ध, या देखभाल करने वाले दफ्तर का कर्मचारी या उस संस्था की प्रबन्धकारिणी समिति का मेम्बर उसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय का हो, तो उसमें यहां दिये हुये किसी आदेश से बाधा नहीं होगी।

6. ''अस्पृश्यता'' को, चाहे वह किसी रूप में हो, खत्म किया जाता है और इस सम्बन्ध में किसी भी असमर्थता को लागू करना अपराध समझा जायेगा।

7. यूनियन द्वारा कोई भी पदवी नहीं दी जायेगी। यूनियन का कोई नागरिक किसी विदेशी सरकार की दी हुई पदवी स्वीकार नहीं कर सकेगा।

राज्य के अधीन किसी लाभप्रद या विश्वसनीय जगह पर काम करने वाला कोई व्यक्ति बिना यूनियन सरकार के सहमत हुये किसी विदेशी राज्य से कोई उपहार, वेतन, पद या किसी प्रकार की पदवी स्वीकार नहीं करेगा।

स्वतंत्रता के अधिकार

8. नीचे दिये हुये अधिकारों के प्रयोग के सम्बन्ध में सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता के अधीन स्वतंत्रता होगी, सिवाय उस दशा के जबकि कोई गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न हो जाये, जिसे यूनियन की या सम्बन्धित प्रदेश की सरकार ऐसी घोषित करें और जिससे यूनियन की या उस प्रदेश की, जैसी भी सूरत हो, सुरक्षा खतरे में पड़ जाये:

(क) हर एक नागरिक को भाषण देने और विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता का अधिकार,

(ख) नागरिकों को बिना हथियारों के और शान्तिपूर्वक सम्मिलित होने का अधिकार,

(ग) नागरिकों को सम्मेलन या संघ बनाने का अधिकार,

(घ) हर एक नागरिक को यूनियन की सीमा के अन्दर स्वतंत्रता से इधर-उधर जाने का अधिकार,

(ङ) हर एक नागरिक को यूनियन के किसी भाग में रहने, वहां बसने और सम्पत्ति प्राप्त करने, उसे रखने या किसी प्रकार दे देने और किसी व्यवसाय, व्यापार, कारोबार या पेशे को चलाने या उसे करने का अधिकार,

यदि सार्वजनिक हित के लिये, जिसमें अल्पसंख्यक समूहों और कबीलों के अधिकारों की रक्षा सम्मिलित है, कुछ पाबन्दियों को लगाना आवश्यक हो तो कानून द्वारा उसकी व्यवस्था की जायेगी।

9. यूनियन की सीमा के अन्दर कोई व्यक्ति बिना जाब्ते की कानूनी कार्यवाही के, अपने जीवन या स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समता के अधिकार से वंचित किया जायेगा।

10. यूनियन के कानून के आदेशों के विपरीत न जाते हुये नागरिकों को परस्पर या व्यक्तिगत रूप से एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में व्यापार, व्यवस्था और व्यवहार करने की स्वतंत्रता होगी।

मगर शर्त यह है कि इस धारा के किसी आदेश से किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेशों से अन्दर लाये हुये माल पर, उसी प्रदेश के से नियमों और वहीं की सी दशाओं में ऐसे कर और टैक्स लगाने में कोई बाधा नहीं होगी जो उस प्रदेश में पैदा होने वाले माल पर लगते हों।

मगर शर्त यह है कि व्यवसाय या महसूल के किसी नियम से किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेश पर तरजीह नहीं दी जायेगी।

मगर शर्त यह भी है कि कोई प्रदेश, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता या जनस्वास्थ्य के हित में या किसी खतरे की हालत में, कानून बनाकर पाबन्दी लगा सकता है।

11. मनुष्यों का व्यापार और बेगार और इसी प्रकार दूसरी तरह बलपूर्वक काम लेने की आज्ञा नहीं है और इस निषेध का किसी प्रकार भी उल्लंघन किया जाना अपराध समझा जायेगा।

मगर शर्त यह है कि इस वाक्य-खंड के किसी आदेश से सरकार को सार्वजनिक कामों के लिये अनिवार्य रूप से सेवा कराने में कोई बाधा नहीं होगी, लेकिन ऐसा करने में जाति, धर्म, वर्ण या वर्ग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं बरता जायेगा।

12. 14 वर्ष से कम उम्र का कोई बच्चा किसी कारखाने, खान या किसी दूसरे खतरनाक काम पर नहीं लगाया जायेगा।

धर्म-सम्बन्धी अधिकार

13. सार्वजनिक शान्ति, सदाचार या जनस्वास्थ्य और इस भाग के दूसरे आदेशों के विपरीत न जाते हुये सभी लोगों को अन्त:करण की स्वतंत्रता होगी और किसी धर्म या अनुयायी होने, उसका आचरण करने और उसको फैलाने का समान रूप से अधिकार होगा।

व्याख्या 1 कृपाण धारण करना या उसे इधर-उधर ले जाना सिक्ख धर्म के आचरण के अन्तर्गत समझा जायेगा।

व्याख्या 2 उपरोक्त अधिकारों में कोई ऐसे आर्थिक, माली, राजनैतिक या दूसरे सांसारिक कार्य सम्मिलित नहीं हैं, जिनका संबंध धार्मिक आचरण से हो।

व्याख्या 3 इस वाक्य-खंड में जिस धार्मिक आचरण की स्वतंत्रता दी गई है, उससे राज्य को सामाजिक हित और सुधार के लिये और हिंदुओं की ऐसी धार्मिक संस्थाओं को, जो सार्वजनिक हों, हिंदुओं के किसी वर्ण या सम्प्रदाय के लोगों के वास्ते खोल देने के लिए कानून बनाने में कोई बाधा नहीं होगी।

14. हर एक धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी वर्ग को अपने धार्मिक मामलों का प्रबंध स्वयं करने और कानून के अधीन चल-अचल सम्पत्ति को रखने, उसे प्राप्त करने और उसका प्रबंध करने और धार्मिक या खैराती कामों के लिये संस्थाओं को स्थापित करने या उनकी रक्षा करने का अधिकार होगा।

15. किसी व्यक्ति को ऐसे टैक्स देने के लिए मजबूर नहीं किया जायेगा जिसकी आय स्पष्ट रूप से किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय के हित-साधन या उसकी रक्षा के लिये लगाई जाती हो।

16. किसी व्यक्ति को जो ऐसे स्कूल में पढ़ता हो, जो सार्वजनिक धन से चलाया जाता हो या सहायता पाता हो, उस स्कूल में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में या स्कूल में या उससे सम्बन्धित किसी स्थान में होने वाली धार्मिक पूजा में भाग लेने के लिये मजबूर नहीं जा सकेगा।

17. बलपूर्वक या अनुचित प्रभाव से जो धर्म-परिवर्तन होगा उसे कानून स्वीकार नहीं करेगा।

सांस्कृतिक और शिक्षा-सम्बन्धी अधिकार

18. (1) हर एक प्रदेश में अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति के सम्बन्ध में रक्षा की जायेगी और कोई ऐसे कानून या नियम नहीं बनाये जायेंगे जिनसे इस दिशा में अत्याचार या बाधा हो।

(2) किसी अल्पसंख्यक जाति के विरुद्ध, चाहे उसका आधार धर्म हो या जाति या भाषा, राज्य की शिक्षा-संस्थाओं में दाखिले के सम्बन्ध में भेदभाव नहीं बरता जायेगा और न उनको बलपूर्वक कोई धार्मिक-शिक्षा दी जायेगी।

(3) (क) सब अल्पसंख्यक जातियों को, चाहे उनका आधार धर्म हो या जाति या भाषा, किसी प्रदेश में अपनी इच्छानुसार शिक्षा-संस्थायें स्थापित करने और उनका प्रबंध करने की स्वतंत्रता होगी।

(ख) स्कूलों को राजकीय सहायता देने में राज्य ऐसे स्कूलों के विरुद्ध भेदभाव नहीं करेगा जो अल्पसंख्यक जातियों के प्रबंध में हों चाहे उनका आधार धर्म हो या जाति या भाषा।

विविध अधिकार

19. किसी व्यक्ति या कार्पोरेशन की कोई चल या अचल सम्पत्ति, जिसमें किसी व्यावसायिक या औद्योगिक कारोबार में उनका हिस्सा भी शामिल है, सार्वजनिक काम के लिये तब तक न ली जायेगी और न उस पर अधिकार किया जायेगा जब तक कि ली हुई या अधिकृत सम्पत्ति के लिये कानून में मुआवजा देने की व्यवस्था न हो और उसमें यह स्पष्ट न कर दिया गया हो कि मुआवजा किन सिद्धांतों के अनुसार और किस तरीके से तय किया जायेगा।

20. (1) किसी व्यक्ति को अपराध के लिये तब तक सजा न दी जायेगी जब तक कि उसने उस कानून का उल्लंघन न किया हो, जो उसके ऐसा काम करते समय जिसे अपराध ठहराया गया हो, प्रयोग में था और न उसे उस सजा से अधिक सजा दी जायेगी जो उसके अपराध करते समय कानून द्वारा दी जाती।

(2) किसी व्यक्ति पर एक ही अपराध के लिये एक बार से अधिक मुकदमा नहीं चलाया जायेगा और न वह किसी फौजदारी के मुकद्दमें में अपने विरुद्ध गवाही देने के लिये मजबूर किया जायेगा।

21. (1) यूनियन की सीमा के अन्दर सब जगह और उसके हर एक प्रदेश में यूनियन के सरकारी एक्टों, कागजात और अदालती कार्यवाही को ठीक समझा जायेगा और उसका विश्वास किया जायेगा और यह यूनियन कानून निर्धारित करेगा कि इन एक्टों, कागजात और कार्यवाहियों को किन दशाओं में और किन तरीकों से साबित किया जाये और यह कि इनका असर क्या होगा।

(2) किसी प्रदेश में दिये हुए दीवानी के अन्तिम फैसले, उन शर्तों के विपरीत न जाते हुये जो यूनियन के कानून द्वारा लगाई गई हों, यूनियन की सीमा के अन्दर सब जगह इजरा किये जायेंगे।

वैधानिक उपचारों का अधिकार

22. (1) इसका आश्वासन दिया जाता है कि इस भाग में जिन अधिकारों

की व्यवस्था की गई है उनको प्रयोग में लाने के लिये उचित कार्यवाही द्वारा सर्वोच्च अदालत से दरख्वास्त करने का अधिकार होगा।

(2) दूसरी अदालतों को इस सम्बन्ध में जो अधिकार दिये गये हैं उनके विपरीत न जाते हुए सर्वोच्च अदालत को सशरीर उपस्थित होने की आज्ञा (Habeas Corpus), नीचे की अदालत को आज्ञा (Mandamus), निषेध की आज्ञा (Prohibition), अपना अधिकार साबित करने की आज्ञा (Quo Warranto), और नीचे की अदालत से मुकदमे हटाने की आज्ञा (Certiorari), के रूप में आदेश देने का अधिकार होगा जो कि इस अधिकार की समुचित रक्षा के लिये होगा जिसका कि विधान के इस भाग में आश्वासन दिया गया है।

(3) इन उपचारों को प्रयोग में लाने का अधिकार उस समय तक स्थगित न किया जायेगा जब तक कि विद्रोह या आक्रमण या दूसरी गम्भीर परिस्थिति के उत्पन्न होने पर, और यूनियन या सम्बन्धित प्रदेश की सरकार के ऐसा घोषित किये जाने पर, सार्वजनिक सुरक्षा के लिए इसकी आवश्यकता न हो।

23. यूनियन की धारा-सभा को अधिकार होगा कि वह कानून बनाकर यह तय करे कि वह सशस्त्र सेनाओं या उन सेनाओं के लोगों के सम्बन्ध में, जिन पर सार्वजनिक व्यवस्था सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी है उन अधिकारों में से किसी अधिकार को किस सीमा तक कम कर दे या खत्म कर दे जिनके बारे में इस भाग में आश्वासन दिया गया है, ताकि अनुशासन सुरक्षित रहे और वे अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकें।

24. यूनियन की धारा-सभा इस भाग के उन आदेशों को प्रयोग में लाने के लिये, जिनके सम्बन्ध में कानून बनाने की आवश्यकता है, और उन कामों के लिये सजा नियत करने के लिए, जो इस भाग में अपराध घोषित किये गये हैं और जिनके लिये सजा नहीं दी जा सकती है, कानून बनायेगी।